मासिक

अरफात किरण

रायबरेली

सीरत-ए-नबवी

"सीरत–ए–नबवी स0अ0 इन्सानियत के लिये बाद–ए–बहार है, जो आज भी चल रही है और हमेशा चलती रहेगी। इसके साये में आने वाले खुशक़िस्मत इन्सान न सिर्फ़ अपने बल्कि पूरी इन्सानी बिरादरी के लिये रहमत का सबब होंगे।"

मौलाना अब्दुल्लाह अब्बास नदवी

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

आप स०अ० की सीरत
और
उसकी मांग

सीरत की तक़रीब बहुत मुबारक, और आप स0अ0 के ज़िक्र की नूरानियत व बरकत में एतराज़ किसको हो सकता है। लेकिन क्या ये सिर्फ़ हमारे लिये ज़रूरी है, हमारे बच्चों के लिये नहीं जो मुश्रिकों के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करके अब नबियों को अवतार कहने लगे हैं?क्या ये काफ़ी है कि साल भर में कुछ दिन जश्न मना कर हम इत्मिनान से सो जायें और अपने कान और दिल व दिमाग़ की खिड़की ही बन्द कर लें? अगर हमारी नयी नस्ल जिस पर मिल्लते इस्लामी हिन्द के पूरे भविष्य का दारोमदार है अपने रसूल स0अ0 की सीरत और शिक्षा से बेगाना हो जाती है तो ये सीरत के ईमान में बढ़ोत्तरी करने वाले जलसे और तक़रीरें और ये जश्न व चिराग़ां आख़िर किस मन्तिक़, दानिशमन्दी, और फ़हम व फ़रासत की रौ से जायज़ और किस क़ानून के तहत ठीक होगा?अगर ये मसला करोड़ों रूप्ये खर्च करके और हज़ारों लाखों कारकुनानों और तवील और सख़्त जद्दोजहद के बाद भी हल हो जाता तब भी हमको इस नाज़ुक और अहमतरीन मसले के लिये एक व्यक्ति की तरह खड़े हो जाना चाहिये था, लेकिन इस सूरते हाल में जबकि इसके लिये इस क़दर कसीर और ख़तीर सरमाया की ज़रूरत नहीं, इसकी तरफ़ से ग़फ़लत व बेपरवाही बहुत बुरी बात है और बहुत ख़तरे की बात है।

मौलाना सैय्यद मुहम्मदुल हसनी रह0

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंकः१ जनवरी २०१४ ई० वर्षः६

संरक्षक: हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (अध्यक्ष – दारे अरफ़ात)

निरीक्षक
मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री– दारे अरफ़ात

सम्पादक
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

मुद्रक
मो० हसन नदवी

सह सम्पादक
मो० नफ़ीस ख़ाँ नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

इस अंक में:

अपने जहां से बेख़बर.....२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
ये अन्तर क्यों.....३
मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादीः रह०
इस्लाम के प्रचार की राह में सबसे बड़ी रुकावट.. ४
मौलाना वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
देश का विकास या विनान.....६
मौलाना शमसुल हक़ नदवी
इतिहास गवाह है.....७
मौलाना महमूद अज़हर नदवी
खेलकूद और हमारा समाज.....८
जनाब अबू हाजिर
वसीयत और विरासत के दो मसले.....१०
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
लोकसभा चुनाव और मुस्लिम एजेंडा.....१२
मौलाना वमीज़ अहमद नदवी
इस्लाम की गोद में.....१५
मुहम्मद ग़ौस सीवानी
हया औरत का ख़ज़ाना.....१६
मौलाना मुहम्मद अहमद अली
नाम सुन्नत का काम बिदअत का.....१८
मौलाना अकबर हुसैन ऐनी
सीरिया के मासूम बच्चे गृहयुद्ध की चपेट में.....१९
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी
बहता लहू.....२०
अबुल अब्बास ख़ाँ

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी०.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

प्रति अंक 10रू

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

.........अपने जहां से बेख़बर

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

दुनिया के मौजूदा हालात ने हर व्यक्ति को कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया है। मीडिया ने धरती नाप ली है। सात समन्दर पर अगर कोई सुई गिरती है तो उसकी आहट एक झोपड़ी में सुनायी देती है। इसका परिणाम ये है कि हर व्यक्ति चिन्तक बना हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि मानवता की चिन्ता मुसलमान की अहम ज़िम्मेदारी है क्योंकि इसके पास मानवता के उसूल हैं। दुनिया की ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा है। वो अगर इस अहम चीज़ को दूसरों में नहीं बांटेगा तो एक ओर वो स्वयं धीरे–धीरे महरूमी का शिकार हो जायेगा और दूसरी ओर दग़ाबाज़ों की तरफ़ उन्नति चली जायेगी। बुद्धिजीवियों का ये कर्तव्य है कि वो मार्गदर्शन का काम करें। लेकिन इस समय समस्या ये है कि इस समय हर व्यक्ति अपने जहां से बेख़बर होकर वहां की क़िस्मत के फ़ैसले कर रहा है। होटलों में, कारख़ानों में, कचहरियों में, यहां तक कि अस्पतालों में हर जगह बातचीत का यही विषय नज़र आता है। इसका परिणाम ये है कि हम जो कर सकते हैं उससे बिल्कुल बेपरवाह हो गये हैं, और ज़ाहिर है जब मशीन का कोई पुर्ज़ा अपनी जगह पर काम न करे और उसे दूसरे पुर्ज़ों की ही चिन्ता हो तो ऐसी मशीन कभी नहीं चल सकती। आज हमारा हाल ये है कि अपनी ज़िम्मेदारी का हमें ज़रा भी एहसास नहीं होता और कोई गंभीर काम करने के लिये हम तैयार नहीं होते और अपनी जगह पर रह कर इस जौहर को बर्बाद करने पर लगे हुए हैं।

अगर एक व्यक्ति है तो उसको सबसे पहले अपना निरीक्षण करने की आवश्यकता है कि उसके अन्दर क्या–क्या कमियां हैं। उससे समाज को क्या नुक़सान पहुंच रहा है और वो खुद अपना किस प्रकार नुक़सान कर रहा है। अगर वो किसी एक छोटे से घर का ज़िम्मेदार है तो उसे अपने घर की देखभाल करनी चाहिये। उसके बच्चों का हाल क्या है, वो क्या शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं? और उसके क्या परिणाम होने वाले हैं, उसकी नौजवान बच्चियां किस रास्ते पर जा रही हैं। मीडिया के द्वारा उसके घर पर किस प्रकार के प्रभाव पड़ रहे हैं। समाज की बुराइयां स्वयं उसके घर में किस प्रकार प्रवेश करके उसको तबाह कर रही हैं। इससे आगे बढ़कर वो किसी स्कूल का टीचर है तो उसे अपने छात्रों की चिन्ता करने की आवश्यकता है कि उनका क्या ज़हन बन रहा है। उनके भविष्य में किस प्रकार की तौकियात वाबस्ता की जा सकती हैं। वो देश व राष्ट्र का प्रकाशमान भविष्य है या उसके अन्धकारमय युग की एक पहचान बनने वाली है। अगर वो किसी संस्था का ज़िम्मेदार है तो उसको और आगे सोचने की आवश्यकता है कि इस संस्था के कर्मचारियों के विचार कैसे हैं और उनके द्वारा प्रशिक्षण को किस प्रकार परवान चढ़ रहा है। इसके अन्दर उत्थान व पतन की कैसी कहानियां छिपी हुई हैं। यहां तक कि अगर वो एक दुकानदार है तो उसे सोचने की ज़रूरत है कि मानवता की भलाई के लिये वो कैसा चरित्र बना रहा है। अपने ग्राहकों के साथ उसका संबंध कैसा है। ख़रीद–बिक्री के सफल इस्लामी नियमों को वो जानता है या नहीं जानता, फिर उस पर किस हद तक अमल कर रहा है। अगर वो किसी आन्दोलन से जुड़ा है और उसका ज़िम्मेदार है तो उसे सबसे पहले अपने दिल को टटोलने की आवश्यकता है कि इस आन्दोलन का उद्देश्य क्या है। अल्लाह के रज़ा के लिये वो अल्लाह के बन्दों को जोड़ना चाहता है, और अल्लाह की बन्दगी में उनको लाना चाहता है, या उसके पीछे उसकी अपनी इज़्ज़त और अपना फ़ायदा है। फिर अपनी मातहतों के साथ उसका बर्ताव अच्छा है या बुरा या वो उसमें आप स0अ0 के बेहतरीन नमूने की रोशनी में ज़िन्दगी गुज़ार रहा है। अगर वो किसी अस्पताल में नौकरी कर रहा है तो ये देखने की आवश्यकता है कि उसकी नज़र किसी आने वाले की जेब पर है या उसके धड़कते दिल पर।

दुनिया के मौजूदा हालात ने हर व्यक्ति को अपनी दुनिया से बेख़बर कर दिया है। जहां उसको कोई अधिकार नहीं, जहां उसके बस में कुछ नहीं, वहां के बारे में घन्टों की बातचीत और जहां वो सबकुछ कर सकता है, और कुछ करके वो धीरे–धीरे आलमी मन्ज़रनामें में बदल सकता है, उसके बारे में उसे ज़रा भी एहसास नहीं होता।

ये स्थिति पतन की परिचायक है। ऐसे में हालात को बदलने की आवश्यकता है। जो चीज़ हमारे अधिकार में है उसमें ज़बरदस्त मेहनत के बाद ही अख़्तियार का दायरा बड़ा हो सकता है और वहां पहुंच सकते हैं जहां के बारे में शायद हमने सोचा भी न हो।

ये अन्तर क्यो?

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी रह०

अगर आप इन्जीनियर हैं तो क्या ये ज़रूरी है कि क़ानूनी राय भी आप बेहतर दे सकें? अगर आप शायर हैं तो क्या ये ज़रूरी है कि स्वास्थ समस्याओं में भी आपकी राय सही हो? अगर आप बैरिस्टर हैं तो क्या ये फ़र्ज़ है कि बाग़बानी की कला में भी आप माहिर मान लिये जायें? अगर आप डाक्टर हैं तो ये कहां से है व्यापारिक मामलों में भी आप बेहतरीन सलाहकार समझें जायें? यानि की जब तक किसी कला का पूर्ण अध्ययन उसकी नियम व शर्तों के साथ आपने किसी उस्ताद की शागिर्दी व निगरानी में एक समय तक न किया हो, आप कैसे उस कला के बारे में राय दे सकते हैं? चाहे आप दूसरी कलाओं में कैसी ही क़ाबलियत और महारत रखते हों। ये कोई नाज़ुक और न समझ में आने वाली बात नहीं। एक साधारण सा नियम है जिसे आप रोज़मर्रा के जीवन के हर भाग में बरतते हैं और जब भी कोई इसके विपरीत राह अपनाता है तो आप ख़ुद ही उस पर हंसते हैं। कभी मुस्कुराते हैं, कभी ठहाका लगाते हैं। फिर ये क्या बात हुई कि धर्म के बारे में आप स्वयं ही इस क़ायदे को तोड़ देते हैं? स्वयं ही इस नियम के विरोधी और विरोधी भी कैसे, दुश्मन बन जाते हैं। अगर आपने किसी कालिज से बी.ए. का इम्तिहान पास कर लिया है या बी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त कर ली है या लन्डन से बैरिस्टर हो कर आ गये हैं, तो उसी रोज़, उसी समय इस्लामी शरीअत और हदीस के विद्धान भी बन जाते हैं और कुरआन की व्याख्या भी करने लगते हैं। जिस आयत के आप जो चाहें अर्थ ले लें। जिस हदीस को अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ समझें उससे इनकार कर बैठें। शरीअत के जिस मसले को चाहें अपने अन्दाज़ से पेश कर दें और अगर कोई शामत का मारा आपकी योग्यता पर प्रश्नचिन्ह लगाये तो बस वो तंग ख़्याल है, कठमुल्ला है, पक्षपाती है, अभिव्यक्ति की आज़ादी का दुश्मन है, लकीर का फ़क़ीर है और ख़ुदा जाने क्या–क्या है। मानों आप की अक़्ल और आपकी रोशन ख़्याली ने ये तय कर दिया है कि चिकित्सा के क्षेत्र में केवल वही व्यक्ति ज़बान खोल सकता है जिसने सालों तक इस कला की किताबों का पाठ पढ़ा हो और किसी विश्वस्नीय चिकित्सक की निगरानी में रहकर चिकित्सा की हो और क़ानूनी राय केवल वही दे सकता है जिसने बरसों तक किसी "लॉ कालिज" के प्रमाणित बैरिस्टर या वकील की ज़बान से लेक्चर सुने हों। क़ानूनी पढ़ाई की मोटी–मोटी किताबें पढ़ी हों और इम्तिहान पास किये हों। लेकिन धर्म एक ऐसा विषय है जिसके लिये न किसी कोर्स की आवश्यकता है न किसी टीचर की और न स्वयं ही उसके अध्ययन में समय ख़र्च करने की। बल्कि हर पढ़ा–लिखा हर समय आज़ाद है कि उसके जिस हिस्से को चाहे जिस सूरत में जी चाहे मान ले और जिस हिस्से से जिस वक़्त जी चाहे बेधड़क इनकार कर दे।

एक बैरिस्टर के सामने अगर मैथ या केमेस्ट्री की कोई समस्या हल करने के लिये प्रस्तुत की जाये तो वो बग़ैर झिझके और बग़ैर अपनी बेइज़्ज़ती महसूस किये हुए साफ़ कह देगा कि मैं इस कला से अनभिज्ञ हूं लेकिन वही बैरिस्टर धर्म के हर नाज़ुक से नाज़ुक मसले पर, तौहीद पर, रिसालत पर, हश्र व नश्र पर, एकता व अस्तित्व पर, जन्नत व दोज़ख़ पर, जिन्न व फ़रिश्तों के वजूद पर, बीवियों की संख्या पर, गुलामी पर, जिहाद पर, सोच–विचार व अनुसरण पर, बेधड़क और बेझिझक तक़रीर करना शुरू कर देंगे और ख़ुद को धर्म की बेहतरीन व्याख्या करने वाला शरीअत को प्रतिनिधित्व समझने लगेंगे।

मानो वो ज्ञान जो दूसरे सभी ज्ञानों से पवित्र और वो विषय जो दूसरे सभी विषयों से महत्वपूर्ण और वो बहस जो दूसरी हर बहस से नाज़ुक है वही इस क़दर ओछी और अयोग्य है कि इसके लिये न किसी मेहनत की आवश्यकता है, न किसी समय के ख़र्च करने की, न किसी उस्ताद की शार्गिदी की, उसके सीखने और जानने बल्कि सिखलाने और दूसरों तक पहुंचाने के लिये इस हद तक पर्याप्त है कि किसी अंग्रेज़ी इम्तिहान की सनद प्राप्त हो गयी हो, बल्कि ये भी ज़रूरी नहीं है बस किसी अंग्रेज़ी स्कूल की चहारदीवारी के अन्दर जिन्दगी के कुछ दिन गुज़ारे जाने काफ़ी हैं (किसी अरब अमीरात में कुछ साल बिता लें) और अगर इस नेकी से भी तक़दीर ने महरूम रखा है तो किसी अंग्रेज़ी जानने वाले का कुछ दिन साथ कर लें।

इस्लाम के प्रचार की राह में सबसे बड़ी रुकावट

मौलाना वाज़ेह रशीद हसनी नदवी

दीन के प्रचार के एक महत्वपूर्ण कार्यकर्ता ने हाल ही में लन्दन का दौरा किया था। बताया कि लन्दन में इस्लामी समाज के दो भिन्न–भिन्न पहलू सामने आये। एक तो यूरोप के ज्ञानियो में इस्लाम का सच्चे दिल से अध्ययन का रूझान बढ़ रहा है और जो लोग सच्चे दिल से अध्ययन करते हैं वो उसकी हक़ीक़तों पर यक़ीन करते हुए इसे कुबूल कर रहे हैं। इस्लामी शिक्षा के अध्ययन से ये बात उन पर साफ़ हो रही है कि इस्लाम ही वर्तमान युग में नेतृत्व की योग्यता रखता है और आज की परेशान हाल मानवता की समस्याओं को हल कर सकता है। इसके अध्ययन से उनको ये बात ज्ञात हो रही है कि इस्लाम की ग़लत तस्वीर उनके सामने पेश की गयी थी। इसी के साथ इस्लाम लाने के बाद जब उनका संबंध इस्लामी समाज से होता है तो उनकी कथनी और करनी में अन्तर प्रकट होता है। उनमें से कुछ लोग अपनी भावनाओं की रक्षा हेतू मुसलमानों से अलग–थलग रहने को वरीयता देते हैं। उनमें से एक व्यक्ति से जब इस बारे में सवाल किया गया तो उसने जवाब दिया कि वो मुसलमान जिनको इस्लाम विरासत में मिला है उनका इस्लाम ग़ैर इस्लामी कामों और तरीक़ो से प्रभावित है और वो वास्तविक दीन से वैचारिक व सामाजिक रूप से बहुत दूर जा चुके हैं। वो अपने आस–पास के जाहिल समाज से प्रभावित होकर तोहमात व ख़ुराफ़ात और एतक़ादी व अमली तज़ाद का शिकार हो चुके हैं। माल की लालच उन्हें भी हर समय रहती है और वो इसके लिये जायज़ व नाजायज़ हर प्रकार के साधनों का प्रयोग करते हैं। फिर उनमें और ग़ैरमुस्लिमो में अन्तर क्या है? बल्कि शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में ग़ैर मुस्लिमों से पीछे होने के कारण बहुत सी बीमारियां और कमज़ोरियां मुसलमानों में दूसरों के मुक़ाबले ज़्यादा ही हैं। ये नव मुस्लिम इस्लाम कुबूल करने के बाद पर्दे का प्रयोग मुसलमानों से ज़्यादा करते हैं। अमानत, दयानत और दीन के प्रचार–प्रसार की चिन्ता उन्हें मुसलमानों से अधिक होती है। उनको मुस्लिम समाज की बेपर्दगी पर बहुत सख़्त एतराज़ है। रस्म व रिवाज और तौर व तरीक़ों में अल्लाह की बनायी हुई हदों को पार करना उनको सख़्त नापसंद है।

इस विरोधाभास ने बहुत से नवमुस्लिमों को दिमाग़ी कशमकश में डाल दिया है। एक शिक्षित व्यक्ति ने इस्लाम के अध्ययन के बाद उसे स्वीकार किया लेकिन मुस्लिम सोसाइटी से जब उसका वास्ता पड़ा और मुसलमानों के साथ उसके संबंध स्थापित हुए तो उसने बहुत सी ऐसी चीज़ें देखीं जो बिल्कुल इस्लामी शिक्षा के विपरीत थीं। ये देखकर उसे महसूस हुआ कि अमली ज़िन्दगी में ये लोग ग़ैर मुस्लिमों से बिल्कुल अलग नहीं हैं। सच्चाई, रास्तबाज़ी, अल्लाह का ख़ौफ़, ज़िन्दगी से बेरग़बती और मौत की मुहब्बत की कमी उनके यहां भी है। आपस में हसद व जलन, एक दूसरे की चुग़ली और ख़ुदपसंदी की बीमारी में ये भी पड़े हुए हैं। आख़िर में इस्लाम के नज़रिये और कार्य में अनुकरण के अभाव से बद गुमानी और मायूसी में पड़कर उसने मुस्लिम समाज से अपना संबंध तोड़ लिया और कहा कि इस्लाम सिर्फ़ किताबों में पाया जा सकता है।

इंग्लैण्ड के इस वाक़्ये से मिलते–जुलते वाक़्ये दूसरे देशों में भी पाये जाते हैं। बहुत से ग़ैर मुस्लिमों ने इस्लामी भाईचारे, न्याय व इन्साफ़ और समाजी बराबरी की शिक्षा से प्रभावित होकर इस्लाम स्वीकार किया। इस्लाम कुबूल करने के बाद जब उनको मुसलमानों को क़रीब से देखने का मौक़ा मिला तो वो ये देखकर हैरान व अचम्भित रह गये कि ऊंच–नीच का भेदभाव उनके यहां भी है। नस्ल परस्ती और क़ौमियत के अफ़रियत ने उन्हें इस्लाम के बारे में शक व शुब्हे में डाल दिया। कौमवाद, क्षेत्रवाद और रस्म व रिवाज में वो दूसरी क़ौमों से ज़्यादा अलग नहीं हैं। इसलिये इस्लाम कुबूल करने के बाद उनको मायूसी होती है।

ये स्थिति इसलिये हुई कि मुसलमानों ने दीन की समझ और उस पर अमल के सिलसिले में दो रुख़ी पॉलिसी अपना ली है। या दूसरे शब्दों में इस्लाम के नज़रिये Theory और अमल Practice के बारे में अलग–अलग रास्ते अपना लिये हैं। इसीलिये इस्लाम एक न अमल कर पाने वाला सिद्धान्त बन कर रह गया है। वो एक ऐसी दावत बन गया है जिसका अमली ज़िन्दगी में

वजूद नहीं बल्कि वो एक किताबी चीज़ है जिसको बयान की महफ़िलों में सुनाया नहीं जाता या बहुत ही महदूद दायरे में लोग इस पर अमल करते हैं। उलमा व इस्लाम की दावत देने वाले इसको इस अन्दाज़ में पेश करते हैं जैसे वो अतीत की कोई याद है और फिर अतीत से अपने आप को इस तरह जोड़ते हैं कि हाल से उनका कोई रिश्ता ही नहीं रहता। जबकि दूसरी तरफ़ कुछ लोग हाल के ऐसे मतवाले हैं कि इस्लाम को भी एक राजनीतिक आंदोलन की शक्ल में पेश करते हैं। इसी विरोधाभास का प्रदर्शन इस्लामी दुनिया के विभिन्न देशों में हो रहा है। जहां समस्यांए बढ़ती जा रही हैं और उनका हल ग़ैर इस्लामी तरीक़ो से ढूंढा जा रहा है।

हमारी आज की ये स्थिति तीसरी सदी हिजरी के हालात से किसी भी तरह अलग नहीं। तीसरी सदी हिजरी मुसलमानों में सिद्धान्तों के उत्थान का युग था। इस्लाम के उलमा मसीहियों और इनकार करने वालों के सिद्धान्तों की काट करने के लिये अक़्ल की दलीलें और सैद्धान्तिक नियमों को अपनाते थे। लेकिन धीरे–धीरे यही उसलूब मुसलमानों में चल पड़ा और उन नयी सैद्धान्तिक समस्याओं और बहसों को लेकर आपस में गिरोहबन्दी और जमाअत बन्दी शुरू हो गयी और बात इस हद तक पहुंच गयी कि अब वो एक दूसरे की काट करने लगे। एक सोच अगर दूसरे वर्ग से सोच से पूरी तरह नहीं मिलती तो इसको सख़्ती से रद्द करना और जो व्यक्ति उससे पूरी तरह से सहमत न हो उसको ज़ुल्म व ज़बरदस्ती का निशाना बनाना उनका शेवा बन गया।

आज नये आन्दोलनों और दावतों और नयी अक़्ल से प्रभावित होने से मुसलमानों के शिक्षित वर्ग में यही सोच आम हो रही है। उन्होंने इन आन्दोलनों के दावत देने वालों के कामों से प्रभावित होकर अलग–अलग पार्टियां बना लीं हैं और एक के सहयोग और दूसरे के विरोध को अपना मिशन बना लिया है।

इस समय पश्चिम में जहां के लोग तेज़ी से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ईमान की बहस, फ़िक़्ही और मसलकी झगड़ा तेज़ी के साथ बढ़ रहा है। ये झगड़े इस हद तक पहुंच गये हैं कि उनकी वजह से मस्जिदें और मदरसे अलग किये जा रहे हैं। एक दूसरे के ख़िलाफ़ नफ़रत के फ़तवे जारी किये जा रहे हैं और उनकी एकता को तोड़ने के लिये हर प्रकार मसले सामने लाये जा रहे हैं। सोच की यही सख़्ती और धार्मिक पक्षपात के कारण से इस्लाम के प्रचार–प्रसार में बड़ी–बड़ी रुकावटें पैदा हो रही हैं। जीवन की नयी समस्याओं को हल करने की ओर से लापरवाही बरती जा रही है।

मुसलमानों की यही आम स्थिति दूसरों के दिलों में इस्लाम से नफ़रत पैदा करने का बहुत बड़ा कारण है। आज मुसलमानों के समाज में कितने झगड़े उठ खड़े हुए हैं जिनको निपटाने के लिये ग़ैर मुस्लिम शासनों को बीच–बचाव करना पड़ता है और ग़ैर मुस्लिम पत्रकारों को इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ कीचड़ उछालने का मौक़ा मिल जाता है। इस क्रम में एक इंग्लैन्डी नव मुस्लिम का बयान चर्चा योग्य है, वो कहता है कि मुझे इस बात पर बहुत ताज्जुब है कि मुसलमानों के पास अल्लाह की किताब मौजूद है, जिससे वो अपनी ज़िन्दगी में रोशनी हासिल कर सकते हैं, लेकिन वो दूसरी व्यवस्थाओं और सिद्धान्तों की पैरवी करते हैं, ये बात मेरे लिये बड़ी हैरत की बात है कि अक्सर मुसलमान पश्चिम के उन घिसे–पिटे और बेकार सोच और तरीक़े को अनुसरण योग्य समझते हैं जिनको ख़ुद पश्चिम वाले अब अयोग्य और हानिकारक समझने लगे हैं।

ये एक वास्तविकता है कि इस्लाम ने अपने पवित्र विचारों और आसमानी संदेश की अच्छाइयों के आधार पर लोगों के दिल जीत लिये, उनके हृदय को प्रभावित किया, उनके दिलों को ख़ुश किया, फिर इस्लामी शिक्षाओं से संतुष्ट होकर उन्होंने इस्लाम को क़ुबूल कर लिया, या क़ुबूल करने का इरादा कर लिया लेकिन मुसलमानों के हालात और उनकी ज़िन्दगी के ग़ैर इस्लामी तरीक़े ने उन्हें शक व शुब्हे में डाल दिया और हक़ की राह से उनके क़दम डगमगा गये। इसलिये ऐसा कोई व्यक्ति ये अनुभव करते हुए दीन से ख़फ़ हो जाता है कि इस्लाम मानव जीवन को अबदी सआदतों से हमकिनार नहीं कर सकता तो इसकी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी इस्लाम के आलिमों और लोगों पर आती है। अतः मुसलमानों के लिये आवश्यक है कि उन्हें इस बात का एहसास होना चाहिये कि निगाहें उनका पीछा कर रही हैं और उनके एक एक काम पर लोगों की नज़रें हैं और उनकी ज़िन्दगी में ही वो इस्लाम की हक़्क़ानियत को तलाश करते हैं।

देश का विकास या विनाश

मौलाना शमसुल हक़ नदवी

इस वक़्त हमारा देश जिस प्रकार की अव्यवस्था का शिकार है शायद ही कभी ऐसा रहा हो। क़त्ल व ख़ूंरेज़ी जीवन की दिनचर्या में शामिल हो गयी है। कभी ऊंची ज़ात वाले नीची ज़ात वालों को जलाते–मारते हैं और ये जब नीची ज़ात वाले भी जब आजिज़ आ जाते हैं तो आख़िरकार बदले पर उतर आते हैं और इतनी बुरी तरह बदला लेते हैं कि मानवता कांप उठती है। कभी बहुसंख्यक अल्पसंख्यक को जलाते–मारते हैं और कभी थोड़े से अल्पसंख्यक बहुसंख्यक को बहुत बेदर्दी के साथ गोलियों से भून कर रख देते हैं। जहेज़ की भेंट चढ़ने वाली औरतों, लुटेरों, उच्चकों और मामूली झगड़ों और भिन्नताओं पर क़त्ल व ख़ूरेज़ी के वाक़्ये अलग है।

क्षेत्रीय, भाषायी और क़ौमी पक्षपात के आधार पर जो कुछ हो रहा है वो भी किसी से छिपा नहीं। इसी के साथ–साथ स्ट्राइकों और आये दिन बन्द मनाने, जुलूस निकालने का एक न समाप्त होने वाला सिलसिला अलग जारी है। इसमें देश की कितनी योग्यतांए नष्ट हो रहीं हैं, कितना नुक़सान हो रहा है, इसका हिसाब लगाना आसान नहीं है। वो देश जिसमें ग़रीबी हटाओं का नारा दिया जा रहा हो, जिसमें बेराज़गारी आम हो, लाखों की संख्या में लोग झोपड़ियों में रहते हों, वो देश जिसमें बेरहमी व बरबरबियत इस हद को पहुंच गयी हो डाक्टरों का वर्ग जिसको रहमदिली और मानवीय हमदर्दी का पाठ पढ़ाया जाता है वो मरीज़ों को तड़पता देखता हो और चिकित्सीय सेवा देने से इनकार करता हो, उस देश का भविष्य क्या होगा? इसका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल नहीं, एक ओर तो हमारे देश के ये ख़तरनाक व दिल दहला देने वाले हालात हैं जो बिना किसी क्षण की देरी के इस बात के पक्षधर हैं कि इस आग को बुझाया जाये। जिसके अन्दर आग बुझाने की जितनी योग्यता हो। दूसरी ओर हमारे अरकाने अरबा का ये हाल है कि शिक्षण पाठ्यक्रम में वो ज़हर घोल रहे हैं जो पानी के बजाये तेल का काम करे।

इसको कोताही या सादगी का नाम दिया जाये या अदूरदर्शिता का कि एक ओर तो देश में आग के शोले उठ रहे हैं और दूसरी ओर हाल ये है कि हालात संभालने और कन्ट्रोल करने की चिन्ता के बजाय ऐसे हालात पैदा किये जा रहे हैं कि बेचैनी बढ़े। कुछ लोग जो आग बुझाने में हिस्सा ले सकते हों, कोई सकारात्मक रोल निभा सकते हों स्वयं के लाभ पर देश व क़ौम के लाभ को तरजीह दे सकते हों, देश के लिये लाभदायक हो सकते हों, उनको ऐसे मसलों में उलझा दिया जाये जो उनको इसका मौक़ा न दे। कभी मुस्लिम पर्सनल लॉ का मसला खड़ा कर दिया जाता है और इसमें बेशुमार दौलत, वक़्त और क्षमता नष्ट की जाती है। उससे फ़ुरसत नहीं मिलने पाती कि यूनिफ़ार्म सिविल कोड की आवाज़ उठा दी जाती है और कहा जाता है कि इससे फ़िरक़ापरस्ती ख़त्म हो जायेगी। क़ानूनी रूप से ये जायज़ है या नही हम इस बहस में नहीं पड़ते इसलिये कि देश के अख़बारों व पत्रिकाओं ने इस पर भरपूर बहस की है और इसस पैदा होने वाले ख़तरों से हमें आगाह किया है।

हम तो एक मोटी सी बात कहना या पूछना चाहते हैं कि जब देश इतनी समस्याओं और इतने नाज़ुक हालात में घिरा हो जिनको ऊपर बताया गया हो तो उन मसलो को हल करने और हालात को संभालने के बजाये नये मसलों को पैदा करना और देशवासियों की एक बड़ी और योग्य संख्या को अनदेखा करना कहां की समझदारी है?क्या हमारा देश सूखे का ऐसा शिकार हो गया है कि दो चार लोग भी ऐसे नहीं जो बन्द आंखों को खोल सकें और बता सकें कि हालात की मांग क्या है?देश को इस समय मानव प्रेमी, देशप्रेमी और इन्सानों से प्यार करने वाले शासकों की आवश्यकता है। पैदा हो चुके मसलों को दिमाग़ से हटाने के लिये और मसलों को पैदा करना देश के साथ वफ़ादारी है या ग़द्दारी?देश का निर्माण है या देश की बर्बादी?वो निर्माणी योजनांए हमको क्या देंगी जिनसे बर्बादी होती हो। परिणाम की चिन्ता किये बग़ैर, गहराई में जाये बग़ैर कोई नया फ़ार्मूला पेश कर देना और उसको अमली जामा पहनाने के लिये तैयार रहना देश को तबाह करने वाला है। हमको हर प्रकार के पक्षपात से परे होकर देश के लाभ पर विचार करना और उसकी चिन्ता करनी चाहिये कि यही इस समय की अस्ल समस्या है।

इतिहास गवाह है

मौलाना महमूद अज़हार नदवी

ख़िलाफ़त–ए–उस्मानिया 1288–1924 अपने उरूज पर है। इसके दसवें सुल्तान सुलेमान आज़म क़ानूनी 1495–1566 के शासन का दौर 1520–1566 न केवल उस्मानिया के सुल्तानों बल्कि दुनिया के इतिहास का एक बहुत ही महत्वपूर्ण दौर गिना जाता है। उस समय पूरी ज़मीन पर उससे बड़ा कोई सुल्तान नहीं था। सोलहवीं सदी में तुर्कों की अपार सफलता, उसकी ज़बरदस्त फ़ौजी ताक़त और महानता की एहसानमन्द हैं। उसने बिल्ग्रेट को 1512 में विजयी किया, रोड्स को 1522 में जीता, हंगरी को 1526 में फ़तेह किया। वो बूडा, दक्षिणी अफ़्रीक़ा और दूसरे शहरों का भी विजयी था। उसका साम्राज्य बूडा से बसरा तक कैस्पियन सागर से लेकर रूमी सागर के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ था और इसमें यूरोप, एशिया, अफ़्रीक़ा के बहुत से देश शामिल थे। वो हिन्द महासागर में भी प्रभावित था। लाल सागर पर तो उसका सम्पूर्ण प्रभुत्व था। वो कहा करता था कि वो बहुत से शासनो का फ़रमांरवा है, तीन महाद्वीपों का सुल्तान है और दो समुद्रों का मालिक है।

सुल्तान को एक मस्जिद निर्माण की चिन्ता होती है। उसने प्रशासनिक कर्मचारियों को इस्ताम्बुल की सबसे खुशनुमा जगह के चुनाव की ज़िम्मेदारी सुपुर्द कर दी। हिदायत के अनुसार सुल्तान के कारिन्दे मस्जिद की जगह के खोज और उसके चुनाव के लिये फैल चुके हैं। और अन्त में उन्होंने इस्ताम्बुल की एक जगह का चुनाव कर ही लिया।

वो जगह बहुत ही दिलफ़रेब और उसकी जगह बहुत ही खुशनुमा है। मगर उसमें एक पेचीदगी है जिसका हल न सुल्तान के पास है और न सल्तनत के ज़िम्मेदारों के पास। वो समस्या ये है कि इसके बीच में एक झोपड़ी है जिसका मालिक उसे छोड़ने के लिये तैयार नहीं और मस्जिद निर्माण से पहले उस झोपड़ी का गिराया जाना आवश्यक है। सुल्तान के कारिन्दे जाकर यहूदी का दरवाज़ा खटखटकाते हैं, यहूदी बाहर आता है और कहता है कि ख़ैर तो है, क्या बात है?जवाब दिया जाता है कि हम सुल्तान के कारिन्दे हैं और सुल्तान के कहने पर हम लोग एक मस्जिद के निर्माण के लिये सही जगह की खोज करने के लिये तैनात किये गये हैं। यहूदी ने कहा कि मेरा इससे कोई लेना–देना नहीं है। मैं निर्माण करने वाला नहीं हूं। सुल्तान के कारिन्दे कहते हैं कि जो जगह मस्जिद के निर्माण के लिये चुनी गयी है इसके बीच में एक झोपड़ी है और उसके होते हुए मस्जिद का निर्माण असम्भव है। यहूदी सवाल करता है, क्या तुम मेरी झोपड़ी गिरा दोगे?कारिन्दों ने जवाब दिया हम उसको ख़रीदेंगे तुम उसकी कितनी क़ीमत लोगे?

यहूदीः बिल्कुल नहीं..... बेचने का मेरा कोई इरादा नहीं है।

कारिन्देः हम तुमको इतना मुआवज़ा देंगे कि तुम इससे कहीं बेहतर घर ख़रीद सकते हो।

यहूदीः बिल्कुल नहीं.....बिल्कुल नहीं..... मुझको मेरा झोपड़ा प्यारा है। ये माना कि वो एक झोपड़ा है, मगर यहां का मन्ज़र इतना अच्छा है, यहां से समन्द्र के पानी को हम देख सकते हैं।

कोई बात उस यहूदी पर असर नहीं डालती। सब कारिन्दे सुल्तान के पास वापिस गये और पूरे हालात बयान किये और कहाः सुल्तन जिस क्षेत्र को हम लोगों ने मस्जिद के लिये चुना है वो हम लोगों को बहुत पसंद है लेकिन उसके बची में एक यहूदी की झोपड़ी है हम लोगों ने ख़रीदने की बहुत कोशिश की और बड़ी रक़म की भी पेशकश की, मगर वो इसके लिये राज़ी न हुआ। अगर आप हुक्म दें तो उसको ज़ब्त कर लिया जाये और झोपड़ी गिरा दी जाये।

.....(शेष पेज 9 पर)

खेलकूद और हमारा समाज

जनाब अबू हाजिर

पश्चिमी सभ्यता ने जीवन के जिन भागों को असाधारण महत्व दिया है उनमें खेल और तफ़रीह भी है, जिसे सभ्यता का आवश्यक भाग घोषित कर दिया गया है। शिक्षा के सिद्धान्त में खेल को इसलिये अपनाया गया था कि इससे सेहत ठीक रहती है और ताज़गी पैदा होती है, जिससे शिक्षा की ओर ध्यानाकर्षण में मदद मिलती है। इसलिये खेल का शिक्षा से एक विशेष प्रकार का जोड़ है। अधिकतर देशों में शिक्षा मंत्री ही खेल विभाग का ज़िम्मेदार होता है।

खेल को यूनानी युग से ही महत्व प्राप्त है। ओलम्पिक खेलों का सिलसिला भी इसी युग की यादगार है। लेकिन पुराने ज़माने में ये शिक्षा से संबंधित नहीं था और शासन और दौलतमन्द वर्ग इसको हंसी–तफ़रीह का माध्यम समझता था। दिमाग़ी थकान को दूर करने के लिये और ताज़गी प्राप्त करने के लिये इसकी व्यवस्था की जाती थी। ज़वाल के युग मे इसका दायरा बहुत बढ़ गया था और इसमें इतना तनू पैदा कर लिया गया था कि वो जीवन के अधिकतर भाग पर छा गया और हर वर्ग के लोग इसमें दिलचस्पी लेने लगे।

क़ौमों के उत्थान व पतन के इतिहास में इसकी अधिकतर मिसालें मिलती हैं कि पतन के युग में तफ़रीह और वक़्त गुज़ारी और दिमाग़ी अय्याशी के साधन से दिलचस्पी बढ़ जाती है, जिसके बढ़ने से कार्यक्षमता में और विचार करने की योग्यता में बढ़ोत्तरी के बजाय कमी आ जाती है। फ़न से दिलचस्पी आवश्यकतानुसार पैदा की जाती है और धीरे–धीरे गंभीरता और सोच–विचार की व्यस्तता से ध्यान हटना शुरू हो जाता है। जिसका परिणाम ये होता है कि फ़न व तफ़रीह जीवन की महत्वपूर्ण व्यस्तता बन जाती हैं।

यदि उत्थान व पतन के इतिहास पर नज़र डाली जाये तो पता चलेगा कि व्यस्तता, बहादुरी व जवांमर्दी से उत्थान आरम्भ होता है फिर ज्ञान व सभ्यता और संस्कृति का युग आता है और आख़िरी युग में फ़न से दिलचस्पी सब पर छा जाती है और इसी के साथ पतन आरम्भ हो जाता है।

जीवन वास्तव में संतुलन से स्थापित है। जीवन के किसी एक भाग को उसकी आवश्यकता व महत्व से अधिक जगह देने से संतुलन बिगड़ जाता है और फिर वो काम लाभदायक होने के बजाय हानिकारक हो जाता है। इसलिये कि क़ौम का ज़हनी रूझान और व्यस्तता किसी एक ओर जाने से दूसरे महत्वपूर्ण भाग नज़रअन्दाज़ कर दिये जाते हैं।

खेल भी एक संकुचित लाभ और महत्व रखने वाला कार्य है। पुराने ज़माने में खेल के लिये वो समय निश्चित किया जाता था जो काम का न हो और समाज में खेल से दिलचस्पी रखने वालों की जगह वही होती थी जो फ़न के माहिरों की होती थी, जो समाज को दिलचस्पी का सामान उपलब्ध कराते हैं। वो ज्ञानी व विचारक और राजनीति के लिये एक सहयोगी बल्कि सेवक की हैसियत रखते हैं इसलिये ज़्यादातर खेलों का वक़्त ज़ुहर व अस्र के बीच निश्चित किया गया था और उससे दिलचस्पी रखने वाले इल्म व सियासत से संबंधित रहते थे ताकि उसका असर काम पर न पड़े और काम से जो थकान होती है शाम के वक़्त उसे दूर करने का बन्दो बस्त हो सके।

क्रिकेट एक ऐसा खेल है जो शायद एक व्यवस्थित षड़यन्त्र के तहत ईजाद किया गया है ताकि विकासशील क़ौमों को काम की ओर ध्यान देने और काम में व्यस्त रहने से रोका जा सके। इसका समय केवल यही नहीं कि ख़ास काम और व्यस्तता के समय का है बल्कि इसका सिलसिला महीना दो महीना चलता है, हर मुक़ाबला पांच दिन और पांच या छः मुक़ाबलों के दरमियान में छोटे–छोटे कई मुक़ाबले, मानों की क़ौम को एक दो महीने की छुट्टी दे दी जाती है कि वो इस अर्से में तफ़रीह करें।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का दिल यूं ही काम में

कम लगता है, लेकिन जब क्रिकेट का सिलसिला शुरू हो जाता है तो उनके काम बिल्कुल नियमवार हो जाते हैं। इससे पहले यहां बेकार लोगों की व्यस्तता पतंगबाज़ी, कबूतरबाज़ी, शतरंज और दूसरे खेलों से दिलचस्पी थी जो एक वर्ग विशेष में प्रचलित थे और उनसे दिलचस्पी रखने वाले को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता था। अब क्रिकेट ने इन सब व्यवस्तता की जगह ले ली है। इसमें ख़ास व आम, दीनदार व ग़ैर दीनदार, बड़े–बूढ़े, बच्चे सब एक ओर से दिलचस्पी लेते हैं। यहां तक कि शासन के ज़िम्मेदार इससे दिलचस्पी लेते हैं और देश की टीम के जीतने पर ऐसी खुशी मनायी जाती है कि जैसे कि देश की सेना को जंग के मैदान में सफलता प्राप्त होने पर मनायी जानी चाहिये। खेलने वालों को ऐसे ईनाम दिये जाते हैं कि इस पर बड़े–बड़े वैज्ञानिक, शोधकर्ता रश्क करें। खेल की इस्तलाह प्रयोग की जाती है जिस ज़माने में क्रिकेट मैच होते हैं। कार्यालयों, मदरसों, रेल और हवाई जहाज़ के सफ़र और संगोष्ठी में महत्वपूर्ण विषय होते हैं। लोगों की इसी दिलचस्पी को देखते हुए टीवी पर सारे दिन इस खेल का हाल दिखाया जाता है, ऐसी सूरत में किसी को किताब में, किसी को फ़ाइल में क्या आनन्द आ सकता है। घर के काम–काज को लोग छोड़ देते हैं, उनको इसकी फ़िक्र होती है कि फ़लां की सेन्चुरी बनी या नहीं, स्कोर कितना हुआ, और अब दूसरी टीम क्या पोज़ीशन ले रही होगी।

खिलाड़ियों को लाखों करोड़ोके इनामो के सिलसिले ने इसमें जनसाधारण की रूचि और बढ़ा दी है। अरब देशों में इस खेल का महत्व नहीं प्राप्त था। एक पाकिस्तानी खिलाड़ी की कोशिश से अब वहां भी इसका जुनून शुरू हो गया। शारजाह जो एक छोटी सी रियासत है वहां मैच पर लाखों रूपये ख़र्च किये जाते हैं।

फुटबाल का जुनून पहले ही से था, लेकिन वो कम समय के लिये खेला जाता है। क्रिकेट शैतान की आंत की तरह हफ़्तों और महीनों के कार्यकाल को प्रभावित करता है। उन्नति करने वाले देशों में ऐसी व्यस्तता से शासन के ज़िम्मेदारों को रोकना चाहिये जो जनसाधारण के दिमाग़ को पंगु कर दें और देश की उन्नति और निर्माण में ध्यान करने में रूकावट बनें, किन्तु पश्चिम ने दिमागों को ये सोचने के लायक़ ही नहीं छोड़ा।

शेष : इतिहास गवाह है

सुल्तान ने नहीं में सर हिलाया और कहा; हरगिज़ नहीं, हमारा ये दस्तूर नहीं है और न ही हमारा मज़हब किसी पर ज़ुल्म की इजाज़त देता है और न किसी को डराने धमकाने की इजाज़त देता है। हम इसका कोई दूसरा हल ढूंढ़ लेंगे और इस तरह मस्जिद का निर्माण रुक गया।

और आख़िर में सुल्तान ये फ़ैसला किया कि वो इस मामले में शेख़ुल इस्लाम से राय लेंगे। शेख़ुल इस्लाम ने राय दी कि इस मामले में इस्लाम का हुक्म साफ़ है न बेचने की वजह से हम उसको कोई सज़ा नहीं दे सकते, वो झोपड़ी उसकी मिल्कियत है और इसको ज़बरदस्ती नहीं लिया जा सकता है। उसके मरने के बाद उसके बेटे चाहें तो बेच सकते हैं क्योंकि क़ानून माल व दौलत की बाप से बेटे के हस्तान्तरण को स्वीकार करता है। और संक्षेप में ये कि आपके सामने केवल एक ही रास्ता है कि आप किसी तरह से यहूदी को राज़ी करें।

सुल्तान ने कुछ देर सोचा और प्रशासनिक कर्मचारियों को देखा और कहा कि मैं ख़ुद उसके पास जाऊंगा और उससे बेचने की प्रार्थना करूंगा और ऐसा ही हुआ। सुल्तान स्वयं यहूदी के घर गया और दरवाज़ा खटखटाया, यहूदी निकलता है और वो देखता है कि उसके सामने सुल्तान हैं और शासन के कुछ लोग। वो अचम्भित हो गया। उसने सुल्तान को ये कहते हुए सुना कि वो उससे उसकी झोपड़ी बेचने की प्रार्थना करता है। इस बार वो इनकार नहीं कर सका क्योंकि सुल्तान ने उसकी क़ीमत उससे कहीं ज़्यादा पेश की थी जितनी की उससे पहले पेश की गयी थी। और इस तरह झोपड़ी की ख़रीददारी पूरी हो गयी और उस जगह जामिया सुलेमानिया का निर्माण हुआ जो इस्लामिक निर्माणी कला की शानदान मिसाल थी, जितनी कि उससे पहले पेश की गयी थी।

इस प्रकार के क़िस्से इस्लामी इतिहास में बहुत मिलते हैं जो ये बताते हैं कि मुस्लिम सुल्तानों ने ताक़त और कुदरत के बावजूद महान उद्देश्यों के लिये भी छोटे से भी न्याय को नहीं छोड़ा और उनकी इस न्याय प्रियता ने ही उनको इतिहास का हिस्सा बना दिया।

वसीयत और विरासत के दो मसले

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

वारिस के लिये वसीयत करना शरीअत के हिसाब से सही नहीं है। हदीस में इसकी व्याख्या है, लेकिन ध्यान रहे कि मां–बाप और रिश्तेदारों के लिये वसीयत करना पहले वाजिब था। कुरआन मजीद में इरशाद हैः

"जब तुममें किसी की मौत का वक़्त क़रीब आ जाये और वो माल छोड़े तो तुम पर वालिदैन और रिश्तेदारों के लिये नियमानुसार वसीयत फ़र्ज़ की जाती है, परहेज़गारों पर ये लाज़िम है।" (सूरह बक़रहः 180)

फिर ये आदेश रद्द कर दिया गया। इस बारे में कई कथन हैं कि इसके हुक्म को रद्द करने वाली आयत कौन सी है। लेकिन अधिक प्रचलित ये है कि इस हुक्म को रद्द करने वाली आयते मीरासः

"अल्लाह तुम्हें तुम्हारी औलाद के सिलसिले में वसीयत करता है कि लड़के के लिये लड़कियों के मुक़ाबले दुगना हिस्सा है।"

हदीस से भी इसे समर्थन मिलता है। अतः अबूदाऊद और तिरमिज़ी में आंहज़रत स0अ0 का इरशाद नक़ल किया गया है कि अल्लाह तबारक व तआला ने हर हक़ वाले को इसका हक़ दे दिया है। लिहाज़ा किसी भी वारिस के लिये वसीयत ठीक नहीं है। इन्हीं दलीलों को देखते हुए फ़ुक़्हा ने वसीयत की शर्त लिखते हुए ये शर्त भी लिखी है कि वसीयत करने वाले की मौत के वक्त वो व्यक्ति वारिस बन रहा हो जिसके लिये वसीयत की गयी है। (बदाया सनायाः 433/6)

अब सवाल ये पैदा होता है कि अगर कोई व्यक्ति वारिसों के लिये वसीयत इस उद्देश्य से कर रहा है हर व्यक्ति को अपना–अपना हक़ मिल जाये। इसलिये कि देश के क़ानून के कारण कई हक़ वाले, जैसे औरतों को ये हक़ नहीं मिल पाता, जबकि अगर कोई शख़्स वसीयत कर जाये तो देश का क़ानून उसका एहतराम करता है और जिनके लिये वसीयत की गयी है उनको वसीयत के अनुसार दिला देता है तो वसीयत करना जायज़ होगा?इसके जवाब की तरफ़ ऊपर ज़िक्र की गयी हदीस ही में इशारा मौजूद है इसलिये कि इसमें वारिस के लिये वसीयत सही नहीं होने की यही वजह बतायी गयी है कि हर हक़ वाले को उसका हक़ मिल चुका है। अतः किसी वारिस के लिये वसीयत की जाये तो उन अधिकारों में कमी या अधिकता हो जायेगी, जबकि अगर कोई आयत–ए–मीरास के अनुसार वसीयत करता है तो उसका उद्देश्य भी यही है हक़ वाले को उसका हक़ दिला दिया जाये। अतः ये वसीयत जायज़ होनी चाहिये इसलिये कि वो शरीअत की मंशा के मुताबिक़ है। इसलिये हज़रत थानवी रह0 ने इमदादुल फ़तावा में शामी की इबारत को दलील बनाते हुए इसको जायज़ ठहराया है।

वारिस के लिये वसीयत नाजायज़ होने की एक वजह ये भी है कि एक के लिये वसीयत की जाये तो बाक़ी वारिसों को तकलीफ़ और कष्ट होगा। यही कारण है कि हदीस में स्पष्टता के साथ आया है कि अगर बाक़ी वारिस वसीयत की इजाज़त दे दें तो जायज़ हो जायेगी।

"वारिस के लिये वसीयत नहीं है।" (बदाया सनायाः 433/6)

किसी वारिस के लिये वसीयत जायज़ नहीं है सिवाये इसके कि दूसरे वारिस उसकी इजाज़त दे दें। और साफ़ सी बात है कि इस तरह वसीयत के बग़ैर हक़ वालों को उनका हक़ नहीं मिल सकेगा। केवल वसीयत की ही सूरत उनको हक़ दिलाने के लिये तय की गयी हो तो अगरचे इस संबंध में सरीह रिवायत नहीं मिलती, लिहाज़ा फ़तवा के तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन कुछ दलीलों से ऐसा मालूम होता है कि इस हालत में वसीयत करना वाजिब होना चाहिये ये दलीलें निम्नलिखित हैः

1– विरासत के हुक्म कुरआन मजीद में तफ़्सील से बयान किये गये हैं। इस तफ़्सील के अनुसार बांटने को फ़र्ज़ बताया गया है। उनको अल्लाह की बनायी हुई हद क़रार देकर उन पर अमल को जन्नत में दाख़िल होने का ज़रिया और अमल न करने को जहन्नम की आग में जाने की वजह बताया गया है।

(मर्दों का भी हिस्सा है इसमें जो छोड़े मां–बाप और क़राबत वाले और औरतों का भी हिस्सा है इसमें जो छोड़े मां–बाप और क़राबत वाले, थोड़ा हो या बहुत, हिस्सा तय किया हुआ है) (सूरह निसाः 7)

फिर इस संक्षेप की व्याख्या विरासत की आयत में करने के बाद इरशाद हैः

(ये हदें बांधी हुई अल्लाह की हैं और जो कोई हुक्म पर चले अल्लाह के और उसके रसूल के, उसको दाख़िल करेगा जन्नतों में, जिनके नीचे बहती हैं नहरें, हमेशा रहेंगे उनमें और यही है बड़ी मुराद मिलनी, और जो कोई नाफ़रमानी करे अल्लाह और उसके रसूल की और निकल जाये उसकी हदों से, डालेगा उसको आग में, हमेशा रहेगा उसमें और उसके लिये ज़िल्लत का अज़ाब है) (सूरह निसाः 13–14)

2– हदीस शरीफ़ में फ़रमाया गया हैः हक़ वालों को उनका हक़ दो, और जो बच जाये वो अक़रब मर्द का हक़ है। (बुख़ारी, मुस्लिम)

"मिलाओ" और "अल्लाह तआला तुमको वसीयत करता है" में मुख़ातिब मोमिन के वास्ते से इस्लामी हुकूमत है, लेकिन अगर इस हुक्म की तामील मोरिस के किसी अमल पर मौक़ूफ़ हो जाये तो ये अमल यक़ीनी तौर पर इस पर लाज़िम होना चाहिये, इसलिये कि मोमिन को दिया गया जिनमें वो भी शामिल हैं, बल्कि बहुत से तफ़्सीर लिखने वालों ने तो इसी को मुख़ातिब करार दिया है। (रूहुल मआनीः 216/4)

3– कुछ लोगों के निकट "उप्रोक्त आयत" में वसीयत का जो आदेश दिया गया है, उसका जवाब वारिस न बनने वाले माता–पिता और रिश्तेदारों के हक़ में बाक़ी है। लिहाज़ा वसीयत का ये वजूब को उनका हक़ दिलाने के लिये बदरजे ऊला होना चाहिये।

मुसलमानों की ग़ैरमुस्लिमों की विरासत

सही हदीस से साबित होता है कि न मुसलमान ग़ैर मुस्लिम से विरासत पा सकता है न ग़ैर मुस्लिम मुसलमान से। (बुख़ारी, मुस्लिम) इसलिये इस पर उम्मत एक मत है कि ग़ैर मुस्लिम को मुसलमान से विरासत नहीं मिलेगी और जमहूर के निकट मुसलमान ग़ैर मुस्लिम से भी विरासत नही पा सकता है। अल्बत्ता माज़ इब्ने जबल रज़ि0 और कई दूसरे सहाबा के निकट मुसलमान ग़ैर मुस्लिम से विरासत ले सकता है लेकिन उसके बरअक्स उनके निकट भी जायज़ नहीं है।

हज़रत शाह वली उल्लाह देहलवी रह0 ने हुज्जतुल्लाहुल बलाग़ा में इसकी हिकमत बयान करते हुए लिखा हैः कि मैं कहूंगा कि इसकी मशरूइयत इसलिये है कि ये दोनों के बीच मवासात को ख़त्म कर दे। इसलिये कि मुसलमान का काफ़िर से मेल–जोल इसके दीन में बिगाड़ पैदा कर देगा।

बहरहाल जमहूर का मसलक साफ़ दलीलों से साबित है। इसके सही होने पर शक करने की कोई गुंजाइश नहीं है। ये अलग बात है कि जलीलुल क़द्र हज़रात के इख़्तिलाफ़ की वजह से मसला मुजतहिद फ़ीह हो गया है और इस मसले में ज़रूरत पड़ने पर मरजूह क़ौल भी अख़्तियार करने की मिसालें मौजूद हैं और इसमें शुब्हा नहीं कि इस्लाम क़ुबूल करने वालों को अगर विरासत लेने से रोक दिया जाये जबकि खुद वारिस को उसकी मौत हो जाने पर ज़बरदस्ती वारिस बन जाते हैं और देश के क़ानून का सहारा लेते हैं तो इसका दिल टूट सकता है और इसे दिक़्क़तों का सामना करना पड़ सकता है। लिहाज़ा मौजूदा हालात में मुसलमान अपने ग़ैर मुस्लिम वारिस की विरासत हासिल कर ले तो इसकी विरासत होनी चाहिये।

दलील निम्नलिखित हैं।

1– दूसरे वारिस उसको देने पर राज़ी हो तो इसको हिबा क़रार दिया जा सकता है। इसलिये कि मुसलमान के लिये ग़ैर मुस्लिम से हिबा लेना जायज़ है।

2– या उसको शासन का सहयोग घोषित कर दिया जाये इसलिये कि शासन उसके मरने के बाद उसकी जायदाद भी अपने अनुसार तक़सीम करता है।

3– ज़रूरतन मरजूह हाने के बावजूद का क़ौल अपना लिया जाये।

लोकसभा चुनाव और मुस्लिम एजेंडा

मौलाना अहमद वमीज़ नदवी

किसी भी लोकतान्त्रिक देश में राजनीतिक पार्टियों से अपनी उचित मांगे मनवाने के लिये चुनाव बेहतरीन अवसर होते हैं। इस समय देश के पांच राज्यों में चुनाव के अलावा 2014 के आम चुनावों के लिये चुनावी मुहिम का बिगुल बज चुका है। देश भर में चुनाव की तैयारियां ज़ोर व शोर से जारी हैं। सभी राजनीतिक पार्टियां आम चुनाव को ध्यान में रखते हुए रायदहन्दों को आकर्षित करने के लिये एड़ी चोटी का ज़ोर लगा रही हैं। मुज़फ़्फ़रनगर दंगों के द्वारा भाजपा ने अपनी नफ़रत की राजनीति का आरम्भ कर दिया है। आने वाले चुनाव पिछले चुनावों से इसी अर्थ में भिन्न हैं कि इन चुनावों में भाजपा की ओर से एक कट्टर मुस्लिम दुश्मन व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के तौर पर मैदान में उतारा गया है। अगर एक ओर गुजरात दंगों के शोलों को हवा देकर लगातार सफलता प्राप्त करने वाले मोदी के संबंध से संघ परिवार में बहुत आशाएं हैं तो दूसरी ओर कांग्रेस गांधी परिवार के सपूत राहुल गांधी के सपूत को प्रधानमंत्री पद के सम्भावित उम्मीदवार के तौर पर प्रदर्शित कर रही है। राजनीतिक पार्टियां चाहे धर्मनिरपेक्ष हों या साम्प्रदायिक, हर एक का एक ही एजेंडा है चुनावी प्रलोभन दिखाकर जनता को रिझाना और फिर उनके वोटों के सहारे सत्ता तक पहुंचना। देश में हर क़ौम और हर जमाअत का एजेंडा है अगर किसी का एजेंडा नहीं है तो वो मुसलमान हैं। चुनाव क़रीब हैं लेकिन अब तक मुसलमानों ने अपना कोई एजेंडा तैयार नहीं किया है। जब भी देश में चुनाव का मौसम आता है, चर्चित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को अचानक मुसलमानों से हमदर्दी पैदा हो जाती है। फिर वो अलग–अलग वादे करके उन्हें अपना साथी बनाने में सफल हो जाती हैं। इस समय आने वाले चुनावों का ख़ूब चर्चा है। ऐसे में मुस्लिम लीडरां की ज़िम्मेदारी है कि अव्वल तो आम मुसलमानों के संबंध से जागरूक करे। बहुत से मुसलमान अपने वोटों के महत्व से अनभिज्ञ हैं। इसीलिये एक बड़ी संख्या अपने वोट का प्रयोग सिरे से करती ही नहीं है। इसके अलावा साम्प्रदायिक शक्तियों की साज़िशों के कारण बहुत से क्षेत्रों में वोटर लिस्ट से मुसलमानों के नाम ग़ायब हैं। इसका निरीक्षण अतिआवश्यक है। इससे हटकर चुनाव की सबसे बड़ी समस्या ये है कि अधिकांश शहरों में मुसलमानों के निर्णायक होने के बावजूद अनेकता के कारण उनके वोट बेकार हो जाते हैं। मुसलिम वोटों में समानता उत्पन्न करने के लिये और देश में मुसलमानों की समस्याओं को हल करने के लिये अभी से मुस्लिम एजेंडा तैयार करना आवश्यक है। इसके लिये सबसे पहले पूरे देश की एक सयुंक्त मुस्लिम लीडरशिप की स्थापना की जाये जिसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधी हों और हर जमाअत को प्रतिनिधित्व दिया जाये और सबकी सहमति से मुस्लिम एजेंडा तैयार किया जाये। पूरी ताक़त के साथ धर्मनिरपेक्ष सेक्युलर पार्टियों के सामने साफ़ किया जाये जब तक इस एजेंडे पर अमल करने का यक़ीन करने के क़ाबिल इत्मिनान नहीं दिया जाता, मुसलमान उसके हक़ में अपने वोटों का प्रयोग नहीं करेंगे। अब रहा ये मसला कि एजेंडा किन मांगों पर आधारित हो तो उसके कुछ नुक़्ते ये हो सकते हैं:

1– साम्प्रदायिक दंगों पर रोकः ये मुस्लिम एजेंडों का सबसे आधारभूत भाग है। इसके लिये 2011ई0 साम्प्रदायिक दंगों पर रोक बिल को फ़ौरन पार्ल्यामेन्ट में प्रस्तुत किया जाये और उसे पास कराने का हर संभव प्रयास किया जाये। कान्ग्रेस ने 2004 में अपने चुनावी घोषणापत्र में इसका वादा किया था। 2005 ये बिल पार्ल्यामेन्ट में पेश भी किया था लेकिन कुछ संस्थाओं के विरोध करने के बाद इसे पास न किया जा सका। इसके बाद अलग–अलग कमेटियों ने इसमें बहुत से बदलाव प्रस्तुत किये फिर 6 साल के लम्बे अर्से के बाद ये बिल पार्ल्यामेन्ट में प्रस्तुत किया गया, उसके बाद से ये बिल ठन्डे बस्ते में पड़ा हुआ है। ये बिल अगर इसमें पायी जाने वाली कमियां कुछ दूर की जायें तो सामूहिक रूप से

बेहतर है और दंगों पर बहुत हद तक क़ाबू पाया जा सकता है।

इस बिल का पूरा नाम (ACCESS TO JUSTICE PREVENTION AND TARGETED AND REPARATION BILL 2011) है।

जो लगभग 55 पन्नों पर आधारित है जिसमें ग्यारह अध्याय और 135 सेक्शन और चार शेड्यूल हैं। इस बिल की विभिन्न धाराओं में पारदर्शिता व ईमानदारी के साथ दंगों की रोक को यक़ीनी बनाने की बात कही गयी है और पीड़ितों व प्रभावितों का पुनर्निवास, मारे गये लोगों के आश्रितों को उचित मुआवज़ा और शासन प्रशासन के बड़े ओहदेदारों की पकड़ से संबंधित प्रभावित धारांए हैं। सेक्शन तीन साम्प्रदायिक हिंसा की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जिस हिंसा से किसी व्यक्ति या पूरे समूह को नुक़सान पहुंचता हो और जिससे पूरे देश की सेक्यूलर व्यवस्था तबाह व बर्बाद होती हो वो साम्प्रदायिक हिंसा है, और समूह अर्थात मुसलमान, सिख, ईसाई और दलित हैं। इसी प्रकार सेक्शन 13 में ऐसे सरकारी कर्मचारियों के ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्यवाही की बात कही गयी है जो दंगों के दौरान अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हैं। अगर उच्च अधिकारियों ने अपने मातहतों को पक्षपाती आदेश दिये और मातहतों ने उन पर अमल कर दिया तो उन मातहतों को भी क़ुसूरवार ठहराया जायेगा। इसी प्रकार सेक्शन 20 में दंगों से देश के अमन में ख़लल पड़ने की संभावना हो तो केन्द्र सरकार को दख़ल देने का अधिकार है और सेक्शन 21 में बताया गया है कि केन्द्र सरकार एक सात सदस्यी नेशनल अथारिटी की स्थापना करेगी जिसके सभी फ़ैसले मामूली अकसरियत से तय किये जायेंगे। इस अथारिटी का उद्देश्य दंगों की रोकथाम, रिलीफ़ और मुआवज़ा होगा। ये अथारिटी शासन को दंगों के संबंध से राय देगी, अपील सुनेगी, रिपोर्टें लेगी, मुक़दमों की निगरानी करेगी और सरकारी कर्मचारियों के रोल पर नज़र रखेगी।

सेक्शन 110 पीड़ितों व प्रभावितों के मुआवज़ों से संबंध रखता है। इसके तहत हुकूमत पीड़ितों को मुआवज़ा देगी और मुजरिम साबित होने वालों की जायदाद ज़ब्त करके मुआवज़ा वसूल करेगी। मौत की स्थिति में कम से कम 15 लाख मुआवज़ा। शरीर के अंग के हमेशा के लिये ख़राब हो जाने की स्थिति में 5 लाख। आधे ख़राब होने पर 3 लाख और बहुत ज़्यादा ज़ख़्मी होने की सूरत में 2 लाख मुआवज़ा होगा। अपहरण में 2 लाख, बलात्कार के लिये 5 लाख मानसिक कष्ट के लिये कम से कम तीन लाख मुआवज़ा देना लाज़िम क़रार दिया गया। अगर माल या सम्पत्ति का नुक़सान हो जाये तो नुक़सान की अस्ल क़ीमत और इसमें इफ़राते ज़र को शामिल करके मुआवज़ा दिया जायेगा।

इस बिल में शामिल की गयी धाराओं के अन्तर्गत मुआवज़े की रक़म शासन को तीस दिन के अन्दर हर हाल में अदा कर देनी होगी। जहां तक कमियों का संबंध है तो इस बिल की एक कमी ये है कि पुलिस अफ़सरों को इस दायरे में नहीं लाया गया जबकि ज़्यादातर दंगों में पुलिस का रोल सबसे ज़्यादा शुब्हे वाला होता है। दूसरी सुधारयोग्य बात ये है कि बिल संसद में पास होने के एक साल बाद क़ानूनी शक्ल अपनायेगा। ज़ाहिर है कि एक साल का अरसा लम्बा है। देश में जिस तेज़ी के साथ फ़साद हो रहे हैं उसको देखते हुए ये समय केवल दो–तीन माह कर दिया जाये तो बेहतर होगा। साम्प्रदायिक शक्तियों की ओर से इस बिल का पहले दिन से विरोध हो रहा है केवल इस कारण से ये बिल क़ानूनी शक्ल अपना लेगा तो उन्हें साम्प्रदायिक एजेंडे लागू करने का मौक़ा हाथ नहीं लगेगा। बिल के विरोध का एक कारण ये बताया जा रहा है कि इस बिल में बहुसंख्यकों के साथ कार्यवाही का जवाज़ रखा गया है जबकि बिल में अल्पसंख्यकों की पकड़ हेतू कुछ नहीं किया गया है। इसी प्रकार सरकारी कर्मचारियों को सज़ा देने की धाराओं पर भी उंगलियां उठायीं जा रहीं हैं जो कि ठीक नहीं। जब सरकारी कर्मचारी पक्षपात और फ़िरक़ापरस्ती में डूब कर अपने कर्तव्यों का पालन न करें तो ज़रूर उनकी पकड़ होनी चाहिये। साम्प्रदायिक शक्तियां अगर इस बिल का विरोध करके अपनी अल्पसंख्यक दुश्मनी का सुबूत देती हैं तो कोई ताज्जुब की बात नहीं, ताज्जुब तो उन इलाक़ों की पार्टियों पर होता है जो धर्मनिरपेक्ष होने के बावजूद बिल के विरोध में आगे–आगे हैं। बहरहाल 2014 के आम चुनावों में मुस्लिम एजेंडे में साम्प्रदायिक हिंसा की रोक बिल की तुरन्त मंज़ूरी को प्रथम वरीयता प्राप्त होनी चाहिये और मुसलमानों को चाहिये कि वो यूपीए और उसके

गठबन्धन की सेक्यूलर पार्टियों पर ये बात ज़ाहिर कर दें कि मुसलमान 2014 के चुनाव में उसी समय उनका सहयोग करेंगे जब वो इस बिल को पास कर दें।

2– मुसलमान को अपनी आबादी के प्रतिशत से चुनावों में टिकट दिये जायें। संसंद और राज्यों की विद्यानसभा में मुस्लिम प्रतिनिधित्व दिन पर दिन कम होता जा रहा है। इसका आधारभूत कारण ये है कि कांग्रेस और दूसरी सेक्यूलर पार्टियां मुस्लिम उम्मीदवारों को टिकट नहीं देतीं। सांसदीय चुनाव में मुस्लिम उम्मीदवारों को 15 प्रतिशत टिकट दिये जायें। राज्यसभा के लिये 15 प्रतिशत नशिस्तें मुसलमानों के लिये रखीं जायें। लोकसभा के लिये 15 प्रतिशत उम्मीदवार कामयाब न हों तो राज्यसभा में अधिक संख्यां मुस्लिम उम्मीदवारों के नाम की जाये। इसी प्रकार एसेम्बली चुनाव में भी मुसलमानों की आबादी के अनुसार से टिकट उपलब्ध करायें जायें। चुनाव न होने की स्थिति में कानूनसाज़ कौन्सिल के लिये उनका नाम दिया जाये।

3– पुलिस और फ़ौज में आबादी के प्रतिशत के अनुसार मुस्लिम नौजवानों की भर्ती की जाये। इसके लिये राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम संस्थाओं के तौसत से चिंग सेन्टर स्थापित किये जायें।

4– अल्पसंख्यक कमीशन को क़ानूनी अख़्तियार तफ़्वीज़ करते हुए इसमें मुसलमानों के लिये एक विशेष विंग स्थापित किया जाये।

5– सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को आरक्षण दिया जाये। और अर्द्ध सरकारी संस्थाओं के लिये रिज़र्व फ़न्ड में कम से कम 20 प्रतिशत फ़न्ड की मुस्लिम एन जी ओ के लिये रखी जाये।

6– मुसलमानों के लिये कम से कम पांच केन्द्रीय यूनिवर्सिटयों की स्थापना के लिये अमली क़दम उठाया जाये और अल्पसंख्यक कालिजो में अल्पसंख्यकों के लिये कोटा बढ़ाकर कम से कम 70 प्रतिशत किया जाये। उर्दू को उसको हक़ देते हुए देश की सारी यूनिवर्सटियों में उर्दू का विभाग स्थापित किया जाये और नये ज़माने के स्कूलों की पाठ्यक्रम की किताबों से एतराज़ के क़ाबिल विषयों को हटाया जाये। भारत के इतिहास और मुस्लिम शासकों के संबंध से शामिल की गयीं हक़ीक़त के ख़िलाफ़ बातों को पाठ्यक्रम से हटाया जाये।

7– देश के सभी राज्यों में बेकुसूर मुस्लिम नौजवानों की एक बड़ी संख्यां जेलों में न किये हुए गुनाहों की सज़ा काट रही है। उनकी तुरन्त रिहाई के लिये ठोस क़दम उठांए जायें।

8– आर्थिक कार्यों में मुसलमानों की भरपूर मदद की जाये। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट मुसलमानों की आर्थिक व शैक्षिक गिरावट को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है। अल्पसंख्यकों की आर्थिक उन्नति अस्ल में देश की सामूहिक उन्नति है। मुसलमानों के आर्थिक सुधार के लिये हर संभव क़दम उठाये जायें। इसके लिये एक नेशनल मुस्लिम चैम्बर आफ़ कामर्स की स्थापना की जाये। इसी प्रकार मुसलमान नौजवानों का व्यापार में भरपूर सहयोग किया जाये। कार्पोरेट सेक्टर में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ावा जाये।

9– वर्तमान समय में देश में करोड़ो की वक़्फ़ की जायदाद को मुसलमानों के सही इस्तेमाल को यक़ीनी बनाया जाये। मुस्लिम वक़्फ़ का एक बड़ा हिस्सा जो नाजाएज़ क़ब्ज़ों के अधीन है, बहुत सी वक़्फ़ की जायदादों पर स्वयं सरकार का क़ब्ज़ा है। इस सिलसिले में क़ानूनी चारागोई करके मुसलमानों की स्थिति सुधारने के लिये वक्फ़ की जायदाद का सही प्रयोग किया जाये।

ये कुछ काम है देश के लीडरों और मिल्लत के बुद्धिजीवियों और विभिन्न मिल्ली संस्थाओं के ज़िम्मेदार के सर जोड़कर बैठें तो इस प्रकार की और बातें मुस्लिम एजेंडे में शामिल की जा सकती हैं। मुसलमानों का सबसे बड़ी समस्या चुनावी समझ की जागरूकता का है। राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावित मुस्लिम नेतृत्व की कमी के कारण अधिकतर मुसलमान लाभ परस्तों की भेट चढ़ जाते हैं। सेक्यूलर कहलाने वाली क्षेत्रीय पार्टियां ऐन चुनाव से पहले वादे की हरियाली दिखाकर मुस्लिम वोट बटोरने में सफल हो जाते है। देश में इस्लामी मिल्लत की मज़लूमी की दास्तान बहुत ही दर्दनाक है। केवल मज़लूमी का रोना समस्या से नजात नहीं दिला सकता। चुनाव का मौक़ा हमारे लिये बहुत बड़ा हथियार है हमें अपने वोटों में एकता पैदा करते हुए जहां फ़िरक़ापरस्तों को शिकस्त देना है वहीं धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को ये पैग़ाम देना है कि मुसलमान केवल वोट बैंक नहीं है।

इस्लाम की गोद में

मुहम्मद ग़ौस सीवानी

पश्चिम हैरान है। क्लेसाई परेशान है। तसलीस के हामियों की सफ़ में मातम छाया हुआ है। ये क्या हो रहा है? जिस इस्लाम के ख़िलाफ़ सबसे ज़्यादा नफ़रत की बातें फैलाई जा रही हैं वही इस्लाम कैसे पश्चिम पर छाता चला जा रहा है? जिसे औरतों का सबसे बड़ा विरोधी बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है, वही धर्म औरतों को सबसे अधिक प्रभावित कर रहा है। जिस धर्म ने अपने आरम्भिक युग में ही अरब से निकल कर पूरे सेन्ट्रल एशिया को अपने आग़ोश में ले लिया था अब पश्चिम पर भी छाता चला जा रहा है। कोई दिन ऐसा नहीं गुज़रता, जब कोई ईसाई यहां इस्लाम न कुबूल करता हो। आख़िर ये क्यों हो रहा है? अब पश्चिम को किस चीज़ की आवश्यकता है? सब कुछ तो है उसके पास। ख़ुशहाली है, माल व दौलत है, साइंस और टेक्नालॉजी है, आली शान बंगले, सुन्दर पार्क, चकाचौंध भरा जीवन किसी चीज़ की तो कमी नहीं है। मगर फिर भी कमी का एहसास उन्हें इस्लाम तक पहुंचा रहा है? ख़ास तौर पर वो औरतें जिनके पास बेहतरीन कैरियर है, शानदान जीवन शैली है, एक भरपूर जीवन जी रही हैं, और निगाहों के सामने प्रकाश मान भविष्य है, अब उनको और क्या चाहिये कि वो इस्लाम की ओर आकर्षित हो रही हैं। ज़ाहिर है कि पश्चिम के लोगों का जीवन अधिक ख़ुशहाल और संतुष्ट है। उन्हें रोज़मर्रा की आवश्यकतांए, बच्चों की फ़ीस, सेहत और दूसरे ख़र्चों के लिये कोई भागदौड़ नहीं करनी पड़ती। ये सभी आवश्यकतांए सरकार पूरी कर देती है। यहां तक कि पैदा होने वाले बच्चे को भी सरकार की ओर से वज़ीफ़ा मिलने लगता है। शायद यही दुनिया की संतुष्टि और ख़ुशहाली उन्हें ज़हनी तौर पर असंतुष्ट करती है और दिली सुकून की तलाश में वो इस्लाम के दामन मे पनाह लेते हैं।

अपने कैरियर के उरूज पर बहुत सी औरतें असंतुष्टि की अनुभूति करती हैं और दिल के सुकून के लिये उन्हें इस्लाम का सहारा लेना पड़ता है। ये शायद इन्सान की स्वाभाविक चाहत की मांग है कि जब वो हर स्तर पर संतुष्टि प्राप्त कर लेता है, दुनिया में उसकी दिलचस्पी चरम पर होती है तो वो दिल के सुकून की ओर आकर्षित होता है और यही कुछ औरतों के साथ होता है, जो कामयाब जीवन पर गुज़ार सकती हैं।

उदाहरण के तौर पर इंग्लैन्ड के पूर्व प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर की साली लॉरेन बूथ (Lauren Booth) को ले सकते हैं जो हर प्रकार से एक संतुष्ट जीवन व्यतीत कर रही थीं। जर्नलिज़्म में शानदार कैरियर था। अख़बार के लिये कॉलम लिखती थीं। टी.वी. पर बतौर एंकर सफल थीं। और देश के प्रधानमंत्री की साली होने के नाते वी. आई.पी. ट्रीटमेन्ट की भी हक़दार थीं। किन्तु एक इस्लामी देश के सफ़र ने उनके जीवन की दिशा बदल दी। वो मुसलमानों के माहौल में पहुंची और इस्लामी सभ्यता व संस्कृति से वो इस हद तक प्रभावित हुईं कि उन्होंने इस्लाम को अपना लिया और फिर उन्हें दिल के सुकून का ऐसा एहसास हुआ जिससे वो पूरी ज़िन्दगी महरूम थीं। इस ख़ूबसूरत एहसास ने उन्हें मजबूर कर दिया कि वो अपने अतीत से रिश्ता तोड़कर एक नया आत्मिक जीवन का आरम्भ करें। उन्होंने इस्लाम कुबूल करने के बाद अपना नियम बना लिया कि अब वो पूरा शरीर ढकने वाला लिबास पहनेंगी। पर्दा करेंगी और पांच वक़्त की नमाज़ पढ़ेगीं।

क्रिस्टन बैक्लर भी लॉरेन ही की तरह टीवी ऐंकर और कॉलम लेखक थीं। वो पूरी तरह संतुष्ट जीवन व्यतीत कर रहीं थीं। अच्छा कैरियर था। जीवन में किसी भी प्रकार की कोई कमी न थी। मगर जब पहली बार पाकिस्तान के पूर्व क्रिकेटर इमरान ख़ान से मिलकर इस्लाम के संबंध से जाना तो उनका जीवन भी बदल गया। उन्होंने अपने अतीत को पीछे छोड़कर नये आत्मिक लक्ष्य की ओर क़दम बढ़ाया। .....

(शेष पेज 17 पर)

हया
औरत का ख़ज़ाना

मौलाना मुहम्मद अहमद अली

हर इन्सान की फ़ितरत में अल्लाह तआला ने कुछ विशेषतांए रखीं हैं, जिसके कारण मानवता ज़िन्दा और शराफ़त बाक़ी रहती है। उन विशेषताओं में ग़ैरत और हया की विशेषता श्रेष्ठ विशेषताओं में गिनी जाती है। ये दोनों विशेषतांए मनुष्य की प्रकृति में हैं, जो मनुष्य के चरित्र निर्माण में बहुत ही प्रभावित और इस्लामी समाज की पवित्रता की ज़मानत देने वाले हैं। फिर ये विशेषता ख़ासकर औरत के अन्दर होती है। जो स्त्रीत्व का आभूषण और शराफ़त का ताज है। जो औरत की केवल प्राकृतिक और ऐच्छिक आवश्यकता ही नहीं बल्कि इस्लाम की आधारभूत शिक्षा और आदेश है। जिसका वजूद बहुत सी ख़ैर व भलाई और इज़्ज़त, पाकी व पाकदामनी का ज़रिया है। और जिससे नज़र फेर लेना गुनाह और अश्लीलता में पड़े होने और उसके फैलने का साधन है। इसीलिये कुरआन व सुन्नत में हया को इस्लाम का श्रेष्ठत्म विशेषता घोषित किया गया है। नीचे इस क्रम में कुछ हदीसें दी जा रही हैं:

1– एक हदीस में हया को इस्लाम धर्म की श्रेष्ठता घोषित कर दिया गया है। हज़रत ज़ैद इब्ने तलहा रज़ि0 से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने इरशाद फ़रमाया कि हर दीन की कोई श्रेष्ठता होती है और इस्लाम धर्म की श्रेष्ठता हया है। (इब्ने माजा)

कुछ हदीसों में हया और ईमान के बीच गहरे संबंध और रिश्ते को बयान किया गया है; हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 हुज़ूर स0अ0 का इरशाद नक़ल करते हैं कि आप स0अ0 ने फ़रमाया हया ईमान की एक शाख़ है और ईमान का मक़ाम जन्नत है। (तिरमिज़ी शरीफ़)

एक दूसरी हदीस में इरशाद फ़रमाया कि हया और ईमान ये दोनों हमेशा एक साथ और इकट्ठे रहते हैं। जब इन दोनों में से कोई एक उठा लिया जाये तो दूसरा भी उठा लिया जाता है। (बैहिक़ी)

इससे बढ़कर एक हदीस में रसूलुल्लाह स0अ0 ने एक हदीस में हया को सभी पुराने नबियों (अलै0) की एक शिक्षा घोषित कर दिया है। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद रज़ि0 से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमाया अगली नबूवत की बातों में से लोगों ने जो कुछ पाया है उसमें से ये भी है "यानि जब तुममें शर्म व हया न हो तो जो चाहो करो।" (बुख़ारी)

रसूलुल्लाह स0अ0 की इस मुबारक शिक्षा का परिणाम था कि सहाबियात रज़ि0 शर्म व हया का मुकम्मल नमूना थीं। किसी भी मामले में ज़रा सी बेहयाई गवारा न करती थीं। यहां तक कि सख़्त से सख़्त हालात में भी शर्म व हया की चादर ओढ़े रहना और शराफ़त व अख़लाक़ का पैकर बने रहना उनके लिये आसान न था। जिसके बेशुमार क़िस्से हैं।

उनमें हज़रत उम्मे खुलादा रज़ि0 का वाक़्या बड़ा सबक़ देने वाला है। हज़रत क़ैस बिन शमास रज़ि0 का बयान है कि एक ख़ातून सहाबिया रज़ि0 (जिनको उम्मे खुलाद कहा जाता था) उनका बेटा रसूलुल्लाह स0अ0 के साथ जंग में गया हुआ था। जंग से फ़ारिग़ होने के बाद सभी मुसलमान वापिस आ गये, लेकिन उनका बेटा वापस नहीं आया (जो अस्ल में उस जंग में शहीद हो गया था) तो वो रसूलुल्लाह स0अ0 की ख़िदमत में अपने बेटे की जानकारी लेने के लिये आयीं तो अपने चेहरे पर नक़ाब डाले हुए थीं। (उस बेताबी व परेशानी के आलम में भी उनकी हया व पर्दे पर हैरत का इज़हार करते हुए) एक सहाबी रज़ि0 ने कहा कि तुम अपने बेटे का हाल मालूम करने इस हाल में आयी हो कि अपने चेहरे पर नक़ाब डाले हुए हो। (कहने का अर्थ ये कि आम तौर पर ऐसा एहतिमाम नहीं होता जैसा कि उन्होने किया था) हज़रत उम्मे खुलाद रज़ि0 ने इस सवाल का जो जवाब दिया, वो वाक़ई उन्हीं का हक़ था, जिसमें उम्मत की सारी औरतों के लिये इबरत व नसीहत का पैग़ाम है। हज़रत उम्मे खुलाद रज़ि0 ने कहा:

"मेरा बेटा मरा है मेरी हया नहीं मरी है।" (अबूदाऊद)

पता चला कि रंज व ग़म, दर्द व तकलीफ़ और परेशानी की इन्तिहाई हालत में भी शरीफ़ व पाकदामन औरत हया का साथ नहीं छोड़ती और जब ऐसे हालात में हया का इस तरह लिहाज़ रखा जाता है तो फिर रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में

शर्म व हया का लिहाज़ कैसे रखा जाता होगा, इसका अन्दाज़ा नहीं कर सकते। यही हया अस्ल में औरत का बेहतरीन ज़ेवर और क़ीमती जौहर है जिसकी शरीअत ने बड़े एहतिमाम के साथ ताकीद की है।

हया की हक़ीक़त भी समझ लेना चाहिये! कुरआन व हदीस की इस्तलाह में हया का अर्थ बहुत बड़ा है। हमारे यहां तो हया का मतलब इतना ही समझा जाता है कि आदमी शर्मनाक बातें और काम करने से परहेज़ करे। लेकिन कुरआन व हदीस पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि हया; इन्सानी तबियत की उस कैफ़ियत का नाम है कि हर ना मुनासिब और नापसंदीदा बात या काम करने से उसको तकलीफ़ हो। फिर कुरआन व हदीस से भी यही मालूम होता है कि हया का संबंध सिर्फ़ बन्दों ही से नहीं बल्कि हया का सबसे ज़्यादा संबंध उस ख़ालिक व मालिक से है जिसने बन्दों के पैदा किया और जिसकी निगाह से बन्दों का कोई काम व हाल छिपा नहीं है। (मारिफुल हदीसः 286/2)

आज समाज में नग्नता व अश्लीलता का नंगा नाच हो रहा है। बेपर्दगी का बाज़ार गर्म है। सभ्यता व व्यवहारिक मूल्यों से सब वंचित हैं। अच्छे चरित्रों की कमी है। घर घर में भेदभाव का वातावरण है। तलाक़ व खुला की अनुचित मांगों की अधिकता और इस जैसे बहुत से हानिकारक व संगीन बीमारियां औरतों के अन्दर केवल हया के न होने का परिणाम है। जो पूरे इस्लामी समाज के लिये तबाह करने वाला बल्कि दीन व ईमान के लिये सकंट का कारण हो रहा है। वो औरतें जो शर्म व हया का लिहाज़ किये बग़ैर ज़िन्दगी गुज़ारने को ज़माने की मांग और फ़ैशन का माहौल समझती हैं और उसी में अपनी इज़्ज़त महसूस करती हैं, उनको सोचना चाहिये कि सहाबियात रज़ि0 से ज़्यादा इज़्ज़त वाली व शराफ़त की ज़िन्दगी किसी और ने नहीं गुज़ारी। उन्हीं के जीवन में नमूने हैं हर ज़माने की औरतों के लिये। दुनिया व आख़िरत में इज़्ज़त व नजात का सामान है। इसलिये औरतें हया को अपनायें। इस्लाम की दी हुई इस अज़ीम नेमत की क़द्र करें। अपनी ज़बान व काम को हया के ज़ेवर से सजाएं। और अपनी औलाद का ख़ास तौर पर बच्चियों को शर्म व हया का सबक़ बार–बार पढ़ायें कि हया ही उनका मिज़ाज और तबियत बन जाये। यही ईमान की हक़ीक़त औरतों का ज़ेवर है। इसी में अल्लाह की रज़ा व खुशनूदी है। अल्लाह तआला से दुआ है कि हमारी औरतें अपने अस्ल ज़ेवर यानि हया को अपनायें। आमीन!

शेष : इस्लाम की गोद में

उन्होंने पाकिस्तान जाकर नये आत्मिक अनुभव भी किये जबकि वो अपने कैरियर के चरम पर थीं।

कैलिया लेलैन्ड (Cailia Leyland) ने तो केवल बीस साल की उम्र में इस्लाम कुबूल कर लिया था। इसका कारण भी बहुत अजीब व ग़रीब है। इस्लाम को औरतों का विरोधी समझने वाली कैलिया औरतों के एक आन्दोलन की अगुवाकार रही हैं। उन्होने इस्लाम और औरतों की आज़ादी का शब्द पहली बार सुना, तो चौंक उठी और इस विषय से प्रभावित होकर इस्लाम को गले लगा लिया।

जिन पश्चिमी औरतों ने इस्लाम कुबूल किया उनमें से अधिकतर ऐसी थीं जो एक अच्छी जिन्दगी गुज़ार रही थीं। उनमें से अधिकतर की परवरिश एक कट्टर धार्मिक घराने में हुई थी। फिर उनका पेशा उन्हें इस्लाम से बचने का पाठ पढ़ाता था। मगर इन सबके बावजूद उन्होंने इस्लाम को गले लगाया। उन औरतों में क्रिस्टन बैक्लर टीवी ब्राडकास्टर थीं और उन्हें सारी दुनिया के सफ़र करने पड़ते थे। और प्रोग्राम के प्रारूप के अनुसार कपड़े पहनने पड़ते थे। वो चाहकर भी पूरे बदन को ढककर या पर्दा करके स्क्रीन पर नहीं आ सकती थीं। वो इस्लाम से पहले शराब की रसिया भी थीं। किन्तु इन सभी चैलेन्जों से निपटते हुए उन्होंने इस्लाम कुबूल करना पसंद किया और धीरे–धीरे वो इस्लामी शिक्षा पर अमल करने लगीं। अब उन्होंने पूरी तरह से इस्लाम के सामने आत्मसमपर्ण कर दिया है। वो बताती हैं कि एक बार वो एक क्लब में गयीं जहां लोग शराब पी रहे थे, सिगरेट के धुंए उड़ा रहे थे, और संगीत की धुन पर नाच रहे थे। मैंने देखा तो लगा कि मेरा अतीत है, अब मैं इस स्थान से बहुत आगे बढ़ चुकी हूं।

पश्चिम के खुले दिमाग़ के लोग बहुत तेज़ी से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे हैं किन्तु ये अजीब–ग़रीब स्थिति है कि बहुत से ख़ानदानी मुसलमान इस्लाम की शिक्षा को नहीं समझना चाहते और वो पश्चिम की चमक–दमक से इस हद तक प्रभावित हैं कि उन्हें इस्लामी शिक्षा मामूली नज़र आती है।

नाम सुन्नत का काम बिदअत का

मौलाना अकबर हुसैन ऐनी

एक साहब अपनी तक़रीर के बीच में ये कह रहे थे कि देखो नबी ने जश्न–ए–मीलादुन्नबी मनाया है और दलील ये दी कि अल्लाह के रसूल स0अ0 सोमवार के दिन रोज़ा रखते थे। जब आपसे उस दिन के रोज़ा रखने के बारे में पूछा गया कि आप सोमवार के दिन रोज़ा क्यों रखते हैं?तो आपने जवाब दिया "यानि उसी दिन मैं पैदा हुआ था।"

सवाल ये है कि बस इतनी सी बात से दलील पकड़ना की जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी जायज़, शरीअत का काम और रसूल स0अ0 से मुहब्बत का इज़हार है?अल्लाह के रसूल अपनी पैदाइश के दिन रोज़ा रखते थे, लेकिन आप उस दिन झन्डे ले–लेकर जुलूस की शक्ल में, मुहल्ले में, गलियों में और सड़कों पर गश्त लगाते हैं, मस्जिदों से खुद बनाये हुए और बनावटी सलाम की बुलन्द आवाज़, जो कभी–कभी फ़िल्मी गानों की धुन पर भी होती है पूरी बस्ती और मुहल्ले में पहचानी जाती है। इस दिन सामूहिक दावत करते हैं। अच्छे से अच्छा खाना पकाते और खाते हैं। ईद की तरह ख़ुशियां मनाते हैं। रात में चिराग़ां करते हैं।

सवाल ये है कि सहाबा रज़ि0 जो हमसे ज़्यादा दीन को जानते और समझते थे, हमसे ज़्यादा रसूल से मुहब्बत करते थे, हमसे ज़्यादा दीन पर अमल करते थे, क्या उन्होंने रसूल की पैदाइश के दिन झन्डे ले–ले कर जुलूस की शक्ल में गश्त किया था? नारे बाज़ियां की थीं?नारे रिसालत या नारे रसूल का नारा लगाया था?सामूहिक रूप से खुद का बनाया हुआ सलाम बुलन्द आवाज़ में पढ़ा करते थे?इस दिन सामूहिक रूप से खाने की दावत की थी?रात में रोशनी की थी?और ईद की तरह इस दिन ख़ुशियां मनायीं थी?जवाब सिर्फ़ एक है, नहीं।

क्या हम सहाबा से बढ़ गये?सहाबा से ज़्यादा दीन समझने और उस पर अमल करने लगे?सहाबा से ज़्यादा रसूल स0अ0 से मुहब्बत करने लगे?सहाबा से ज़्यादा नेकी के काम में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेने लगे?क्या आज हम सहाबा से ज़्यादा दीन पर अमल करने वाले बन गये?

क्या जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी मनाने वाले हज़रत अबूबक्र, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान, हज़रत अली, हज़रत हसन, हज़रत हुसैन, और हज़रत आयशा रज़ि0 से ये कह सकते हैं कि आप लोगों ने नबी स0अ0 को वो इज़्ज़त नहीं दी जो हमने दी। आप नबी स0अ0 की पैदाइश के दिन सिर्फ़ रोज़ा रखकर ख़ामोश हो गये, लेकिन हमें देखो, हमने बढ़–चढ़ कर जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी मनाया, झूम–झूम कर दरूद व सलाम पढ़ा, झन्डे, डन्डे के साथ जुलूस निकाल कर और नारे रिसालत या रसूलुल्लाह के नारे लगाकर नबी की शान को बुलन्द किया।

भाइयों! हक़ीक़त ये है कि कुरआन और हदीस की तालीम, उसके विपरीत जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी मनाने वालों से ये कहेगी कि सहाबा ने जो किया वही ठीक था। वही शरीअत की तालीम थी। इसी में नबी स0अ0 का अनुसरण, नबी स0अ0 की मुहब्बत और रज़ा थी। इसी में बिदअत से दूरी थी। अल्लाह के रसूल स0अ0 ने अपनी पैदाइश के दिन रोज़ा रखा, इसलिये इस दिन सिर्फ़ रोज़ा रखना ही नबी की इताअत है, नबी की मुहब्बत है औश्र अल्लाह के हुक्म की फ़रमाबरदारी है।

लेकिन अफ़सोस! जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी मनाने वालों ने कुरआन की सूरह हश्र की इस आयत पर अमल नहीं किया इसलिये नबी की सुन्नत से महरूम और सहाबा के तरीक़े से दूर हो गये। अन्जाम ये हुआ कि बिदअत में पड़ गये। अल्लाह ने हुक्म दियाः "ऐ ईमान वालों! तुम अल्लाह और उसके रसूल से आगे न बढ़ो।" (सूरह हुजुरातः 1)

सहाबा ने नबी करीम स0अ0 की पैदाइश के दिन सिर्फ़ रोज़ा रखा इसलिये रसूल से आगे नही बढ़े। लेकिन जश्न–ए–ईद मीलादुन्नबी मनाने वाले बहुत कुछ करके जिन्हें अल्लाह के रसूल स0अ0 ने नहीं किया आगे बढ़ गये। बल्कि नबी करीम स0अ0 के तरीक़े का विरोध किया। नबी करीम स0अ0 ने उस दिन रोज़ा रखा, लेकिन ये उस दिन दावतें उड़ाते हैं। क्या यही रसूलुल्लाह स0अ0 की पैरवी है?क्या यही मुहब्बत–ए–रसूल है?भाइयों होश में आओ! अल्लाह को राज़ी करना है तो नबी का तरीक़ा अपनाओ। नबी के तरीक़े और सुन्नत को छोड़कर और उनसे मुंह मोड़कर, मनचाहा और मनमाना काम करके ये समझना की दीन व सवाब का काम है, कभी नेकी का काम नहीं हो सकता, बल्कि इसका सिला अल्लाह की नाराज़गी के सिवा कुछ नहीं।

सीरिया के मासूम बच्चे गृह युद्ध की चपेट में

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

जब किसी देश के रक्षक और वहां की जनता आमने–सामने हो जाये तो जो स्थिति पैदा होती है वही इस समय सीरिया में है। कुछ समय पहले तक इस देश की गिनती मध्य एशिया के शांतिप्रिय क्षेत्रों में होती थी। लेकिन अरब क्रान्ति की जो आंधी चली, उसके तेज़ झोंके सीरिया की धरती पर भी पहुंचे, जिसके परिणाम में वहां सत्ता विरोधी नारे और फिर हिंसक प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हुआ जो देखते ही देखते गृह युद्ध में बदल गया और पूरा देश बारूद की चादर में लिपट गया।

सीरिया में गृहयुद्ध और ख़ूंरेज़ी के एक हज़ार दिन पूरे हो चुके हैं। इसमें लगभग एक लाख लोग मारे जा चुके हैं और कई लाख इन्सान सलामती की तलाश में या तो बेघर हो चुके हैं या हिजरत के बाद विभिन्न कैम्पों में जीवन बिताने पर मजबूर हैं।

इस संघर्ष के परिणाम में बीसियों हज़ार लोग मौत के घाट उतारे जा चुके हैं वहीं भारी संख्या में सीरिया के बच्चे भी जंग के नतीजों से हताहत हैं। दो हज़ार के क़रीब स्कूल खण्डर हो चुके हैं या अस्थायी कैम्पों में बदल चुके हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार इस गृह युद्ध में 11000 से अधिक बच्चे मारे जा चुके हैं जिनमें 3 से 17 साल की उम्र के लगभग 11500 बच्चे शामिल हैं। जिनमें तीन सौ से ज़्यादा स्नाइपर गन (दपचमत ळनद) से का निशाना बने हैं। जिसका मतलब है कि उन्हें टारगेट करके मारा गया है और 750 से ऊपर बमबारी की वजह से मौत के मुंह में जा चुके हैं। इन मौतों में लड़कियों से ज़्यादा लड़कों को निशाना बनाया गया है। फिर भी ये आंकड़े सटीक नहीं हैं क्योंकि बहुत से क्षेत्रों तक रिसर्चस की टीम पहुंच ही नहीं सकी और उसका भी दावा नहीं है कि रिपोर्ट के आंकड़े सटीक है।

सीरिया में जो बच्चे ज़िन्दा बचे हैं उनमें से एक बहुत बड़ी संख्या को दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। एक ओर उनके सामने मां–बाप और दूसरे अभिभावकों की मौतें हैं तो दूसरी ओर उनके मां–बाप की गिरफ़्तारियां और हिजरत भी है। इसके अलावा ख़ुद उन्हीं को निशाना भी बनाया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (अम जीम बेपसकतमद) की एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग बीस लाख बच्चे ज़रूरी मदद के मुहताज हैं। इनमें से ज़्यादातर बच्चे वो हैं जो अपने अभिभावको को खो चुके हैं और अब ऐसे कैम्पों में जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हैं जहां जीवन की बुनियादी सहूलत भी उपलब्ध नहीं है। उनके बदन का कपड़ा ही उनकी कुल पूंजी है। कैम्पों के चारों ओर गन्दगी का ढेर लगा हुआ है और खाने की कमी के कारण ज़्यादातर बच्चे कमजोर होते चले जा रहे हैं। कैम्प में रहने वाले बच्चों पर मौसम की मार है। गर्म कपड़े न होने के कारण वो बहुत सी बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। उनके लिये उपलब्ध चिकित्सा भी अपर्याप्त है।

सीरिया में जो बच्चें हैं उनमें बड़ी संख्या में बड़ों के दबाव के तहत या स्वयं ही बच्चें जंग में हिस्सा ले रहे हैं। बहुत से लोग अपने बच्चों की भागीदारी को गर्व की बात समझते हैं।

जो बच्चे दूसरे देशों में शरणार्थी हैं न केवल उनकी शिक्षा समाप्त हो गयी है बल्कि वो थोड़े से पैसों के लिये मज़दूरी करने पर मजबूर हैं। एक अन्दाज़े के अनुसार लेबनान और जार्डन में रहने वाले लगभग एक लाख बच्चे या तो मदद के टुकड़ों पर पल रहे हैं या मज़दूरी करके जी रहे हैं। उन मज़दूरों में सात साल तक की उम्र के बच्चे भी शामिल हैं।

सीरिया में चल रहे गृहयुद्ध से सीरिया का कोई भी बच्चा सुरक्षित नहीं। उन्हें जानते हुए भी निशाना बनाया जा रहा है। उन्हें सामान ढोने, निगरानी करने, ख़बर लाने और लड़ाई के लिये ही नहीं प्रयोग किया जा रहा है बल्कि उनके साथ दिल दहला देने वाले जुल्म व सितम की कहानियां भी जुड़ी हुई हैं।

सीरिया में जारी इस गृह युद्ध से आज केवल दो चार देश ही प्रभावित हैं लेकिन ये सिलसिला अगर यूं ही चलता रहा तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इसके प्रभाव ज़रूर पड़ेंगे। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय ताक़ते अपना लाभ उठाने में लगी हुई हैं। और कुछ ग्रुप तो इसे क्रान्ति का नाम भी दे रहे हैं। जबकि हक़ीक़त ये है कि स्वयं जनता ही जनता को निशाना नहीं बनाती। इसके लिये संयुक्त राष्ट्र, और ख़ासकर अरब देशों को इसके हल का गंभीरता से व ठोस क़दम उठाने का प्रयास करना चाहिये ताकि देश को और तबाही से बचाया जा सके।

बहता लहू

अबुल अब्बास ख़ाँ

वो मासूम सा बच्चा स्कूल जाने के लिये घर से निकला था। स्कूल कुछ ज़्यादा दूर भी नहीं था लेकिन फिर भी उसके क़दम कुछ ज़्यादा तेज़ी से बढ़ रहे थे। ऊपर से उड़ने वाले जहाज़ उसको अपनी ओर आकर्षित भी कर लेते। वो उन जहाज़ों को देखता और उनको अनदेखा कर देता और कभी कुछ सहम भी जाता लेकिन उसके क़दम स्कूल की ओर बढ़ते ही जा रहे थे कि अचानक जहाज़ों से गोला बारूद की आग बरसने लगी और.....और पूरे वातावरण में धुंध छा गया। धरती का रंग लाल हो गया। मानव अंग दूर–दूर तक बिखर तक बिखर गये और सुबह का सुकून भरा माहौल चीख़–पुकार में बदल गया। इस चीख़ व पुकार में न जाने कहां उस बच्चे का स्कूल भी गुम हो गया और फिर कुछ ही देर की सिसकियों के बाद उस मासूम की आवाज़ भी ख़ामोश हो गयी। और वो नन्हा सा बच्चा स्कूल पहुंचने के बजाय मौत की दहलीज़ पार कर गया।

❋❋❋

वो नन्हीं सी बच्ची कई दिन से गुड़िया की ज़िद कर रही थी। लेकिन दिन भर की मेहनत–मज़दूरी के बाद बाप के पास इतनी हिम्मत कहां कि रात को बाज़ार जाकर गुड़िया खरीद लाता, लेकिन आज अपनी बेटी की ज़िद के सामने उसे हार माननी पड़ी। बच्चों की ज़िद पूरी होने पर जितनी खुशी बच्चों को होती है, उससे कहीं ज़्यादा खुशी मां–बाप को होती है। उसने अपने जिगर के टुकड़े की उंगली थामी और बाज़ार की ओर चल पड़ा। लड़की की खुशी की इन्तिहा न रही। मैं बोलनी वाली गुड़िया लूंगी और कल क्लास में सबको सहेलियों को दिखाऊंगी, जो मुझे अपने साथ नहीं खिलाता है उसे छूने भी नहीं दूंगी। बच्ची की बात पर बाप मुस्करा देता। वो बार–बार हाथ छुड़ाकर कभी इस दुकान भागती तो कभी उस दुकान। बाप उसके पीछे–पीछे दौड़ता। अभी वो खिलौने की दुकान पर खड़ा एक गुड़िया देख ही रहा था कि अचानक एक ज़ोर का धमाका हुआ और बाज़ार में भगदड़ मच गयी। अफ़रा–तफ़री का माहौल हो गया। बाप अपनी गुड़िया को तलाश करने लगा। वो खुद भी ज़ख़्मों से चूर था लेकिन उसे अपने ज़ख़्मों की परवाह कब थी, खिलौनों की उस दुकान में उसकी गुड़िया भी लत–पथ पड़ी थी। वो चीख़ता हुआ आगे को बढ़ा, अपनी लाडली को सीने से लगाया और तेज़ी से बाहर को भागा। लेकिन उसकी गुड़िया उसकी बाहों से निकल चुकी थी और उसके हाथों में एक लाश थी और वो चीख़–चीख़ कर रो रहा था और अपनी गुड़िया को पुकार रहा था।

❋❋❋

घर के दरवाज़े पर एक नौजवान की लाश रखी हुई थी। ख़ून की रंगत बता रही थी कि उस जिस्म से रूह को अलग हुए अभी ज़्यादा वक़्त नहीं गुज़रा। उसके सरहाने बैठी उसकी मां दहाड़े मारकर रो रही है। उसकी सिसकियों में दुहाइयां भी थीं और बद्दुआंए भी। अतीत की यादें भी थीं और भविष्य की उम्मीदें भीं। कभी सीने को पीटती तो कभी अपने जिगर के टुकड़े के फूल से चेहरे को चूमती। और कभी फूट–फूट कर कहती कि मेरे बेटे ने किसका क्या बिगाड़ा था?और उसका जुर्म क्या था?किस ग़लती की उसको ये सज़ा मिली है?लेकिन उसे कौन बताये कि उस "उन्नति प्रिय" संसार ने सारे मूल्य बदल दिये हैं। जब बम बरसते हैं या गोलियां चलती हैं तो पहल ये मासूम ही निशाना बनते हैं।

❋❋❋

फ़िलिस्तीन में ऐसे मन्ज़र काफ़ी समय से देखे जा रहे हैं। आज़ादी की उम्मीद में निगाहें बूढ़ी हो चुकी हैं। लाश उठाते–उठाते बाज़ू थक हो चुके हैं। बच्चों ने जाना ही नहीं कि बचपना क्या होता है और जवानों की ख़बर ही नहीं कि वो कब बूढ़े हो गये। ज़िन्दगी मौत से बदतर हो चुकी है और मौत का इन्तिज़ार खुद मौत से सख़्त हो चुका है। फ़िलिस्तीन के बाद अब मिस्र और सीरिया में भी यही रील चलायी जा रही है। शायद मुसलमानों का ख़ून दुनिया में सबसे सस्ता हो चुका है या उसमें ऐसी लज़्ज़त पैदा हो गयी है कि हर कोई उसे चखना चाहता है। लेकिन.....

लेकिन कुछ तो कुसूर हम मुसलमानों का भी है। हमने इस्लामी हुक्मों से मुंह मोड़ा। अपने आप से एकता को ख़त्म कर दिया। दुनिया की हवस में हम आख़िरत को भूल बैठे और ये उम्मीद लगा रहे हैं कि हम हमेशा ग़ालिब रहेंगे और ख़ुदा की नुसरत हमारे साथ रहेगी। लेकिन अफ़सोस.....फिर भी हालात बदलने लगे हैं। मुसलमानों का रिश्ता अपने पैदा करने वाले से जुड़ने लगा है और अब ये यक़ीन है कि एक दिन मुसलमानों की हुकूमत का सूरज ज़रूर निकलेगा। इंशाअल्लाह!

जबान की नेकियां

तस्बीहात–ए–फ़ातिमा

दूसरा वाक़्या हज़रत फ़ातिमा रज़ि० का है वो घर का काम करती थीं, ख़ुद चक्की पीसती थीं। उससे हाथों में गट्टे पड़ गये थे और ख़ुद ही मश्क भर कर लाती थीं, ख़ुद झाड़ू देती थीं। एक बार आप स०अ० की ख़िदमत में कुछ लौंडी गुलाम आये हज़रत अली रज़ि० ने हज़रत फ़ातिमा रज़ि० से कहा तुम अपने वालिद की ख़िदमत में जाकर एक ख़ादिम मांग लाओ ताकि सहूलत रहे। वो हुज़ूर पाक स०अ० की ख़िदमत में गयीं देखा कि भीड़ लगी हुई है, इसलिये वापिस आ गयीं। दूसरे दिन हुज़ूर ख़ुद तशरीफ़ लाये और पूछा कि कल तुम किस काम को गयीं थीं। हज़रत फ़ातिमा रज़ि० तो शर्म की वजह से चुप रहीं, हज़रत अली रज़ि० ने कहा, हुज़ूर! चक्की पीसते–पीसते हाथों में निशान पड़ गये, मश्क़ भरते–भरते सीने पर दाग़ पड़ गये, झाड़ू देते–देते कपड़े मैले हो गये, कल आपकी ख़िदमत में कुछ लौंड़ी गुलाम आये थे, मैने इनको भेजा था कि कोई गुलाम मांग लाओ, ताकि कामों में आसानी हो।

आप स०अ० ने फ़रमाया: फ़ातिमा! अल्लाह से डरती रहो, और उसके फ़राएज़ अदा करती रहो और घर के कारोबार को चलाती रहो और जब सोने के लिये लेटो तो सुब्हानल्लाहि, अल्हम्दुलिल्लाहि, अल्लाहु अकबर तैतींस–तैतींस और चौतिस बार पढ़ लिया करो। ये ख़ादिम से बेहतर है।

हज़रत फ़ातिमा रज़ि० ने अर्ज़ किया, मैं अल्लाह और उसके रसूल स०अ० के हुक्म पर राज़ी हूं।

आप स०अ० अपने घरवालों और रिश्तेदारों को ख़ास करके तस्बीह का हुक्म फ़रमाया करते थे, अज़वाज मुतहरात से इरशाद फ़रमाया करते थे कि जब वो सोने का इरादा करें तो ये तस्बीह पढ़ लिया करें। अल्लाह के ज़िक्र से तो आख़िरत में सवाब मिलेगा ही, इस दुनिया में भी इसके बड़े फ़ायदे हैं सबसे बड़ा फ़ायदा दिन का चैन व क़रार है। जिसकी हर आदमी को ज़रूरत होती है और इस समय ये मफ़क़ूद है, हर शख़्स परेशान, बेचैन और बेकल नज़र आता है और ज़िन्दगी तंग मालूम होती है। इसका कीमिया असर नुस्ख़ा अल्लाह की याद है।

मौलाना मुहमद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP - 10

VOLUME-06

ISSUE-01

JANUARY 2014

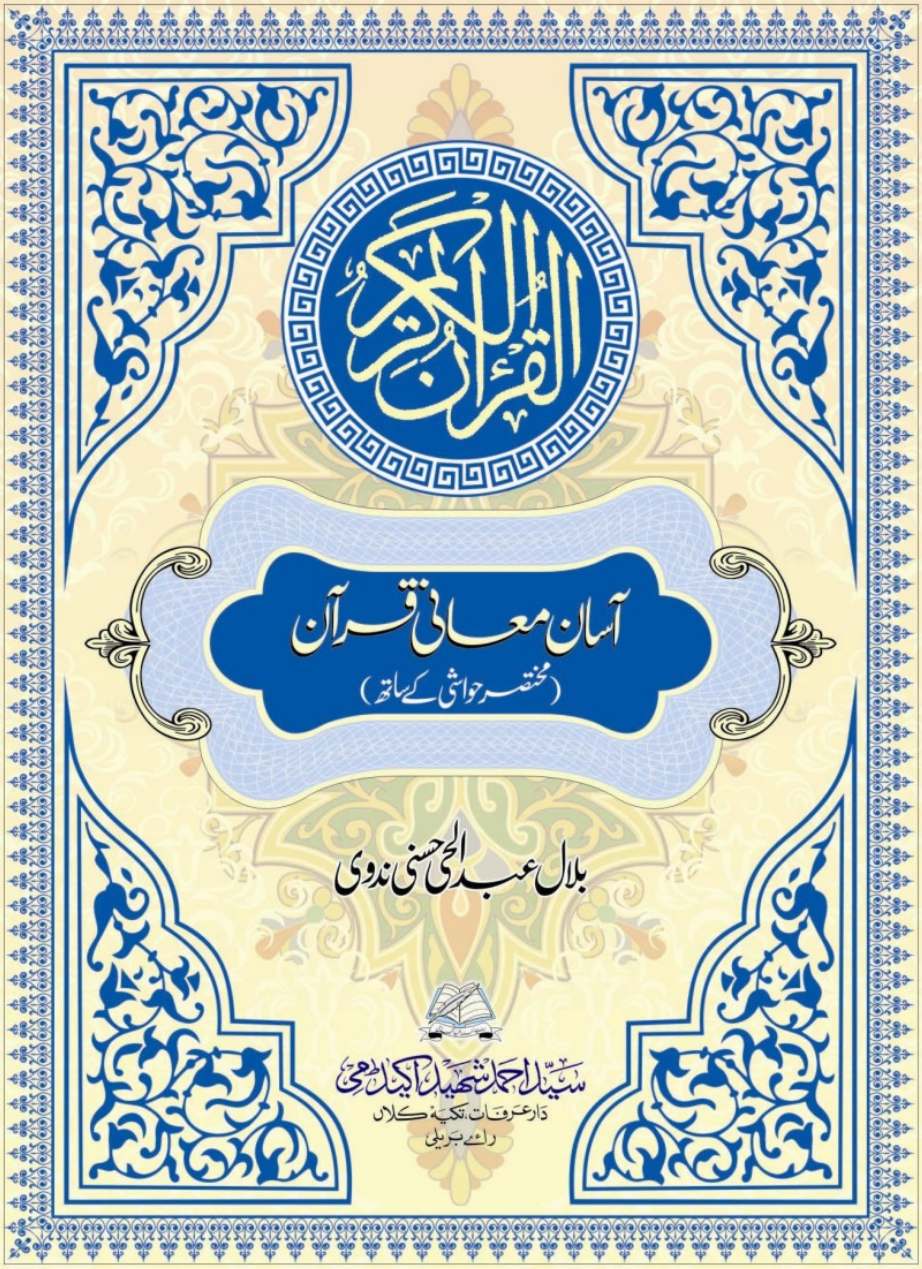

Sayyid Ahmad Shaheed Academy (Contact: 9919331295)

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile: 9918385097, 9918818558
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.